।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

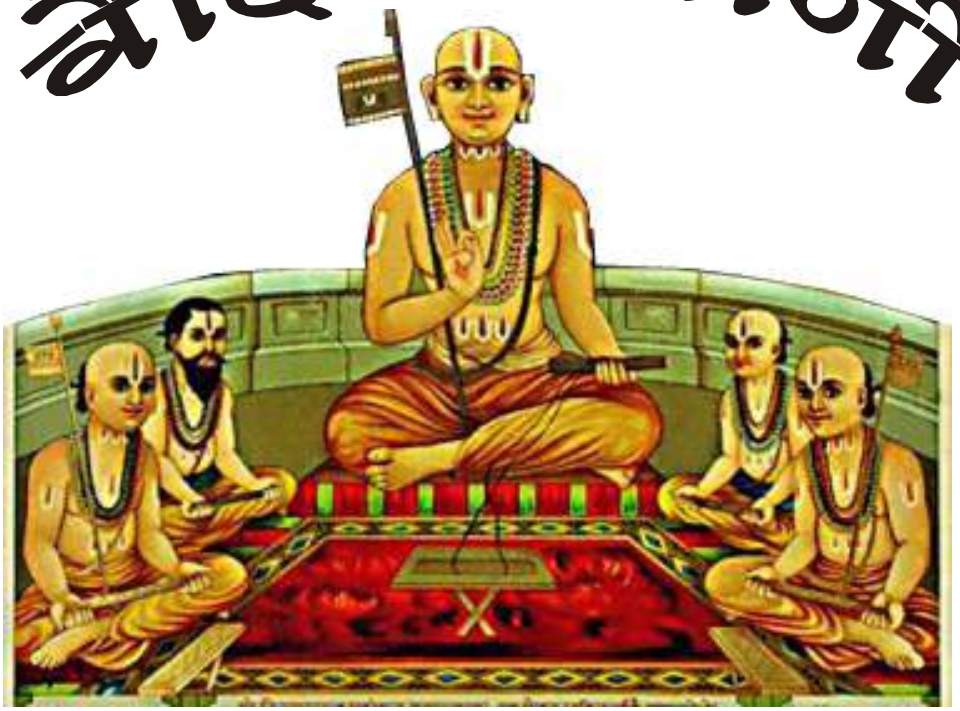

वर्ष- २२ जनवरी-मार्च सन्- २००९ ई०	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- ३ रामानुजाब्द- ९९३ त्रैमासिक प्रकाशन

विराजमानोज्ज्वलपीतवाससं
स्मितातसीसूनसमामलच्छविम् ।
निमग्ननाभिं तनुमध्यमुल्लसद्
विशालावक्षःस्थलशोभिलक्षणम् ।।

आप उज्ज्वल पीत वस्त्र से सुशोभित हो, प्रस्फुटित अतसी पुष्प के समान आपका निर्मल रूप है; आपकी नाभि गहन है, मध्यस्थल क्षीण है, आकार उन्नत है और विशाल वक्ष सुलक्षणों से शोभित है।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	सत्सङ्ग से मिला दिव्य-ज्ञान	
२.	गुरु-शिष्य संवाद	
३.	श्रीवैष्णवता का स्वरूप	
४.	साम्यवाद का रहस्य	
५.	अध्यात्मज्ञान का उदय स्थल भारत है	
६.	केशवादि द्वादश नामों के अर्थ	
७.	आध्यात्मिक ज्ञान का उदय हुआ भारत में	
८.	एकादशी-व्रत के अनुष्ठान से यमलोक शून्य पड़ा	
९.	पितरों की मुक्ति के लिए गया में पिण्ड अवश्य दें	
१०.	भरत-राम संवाद	
११.	श्रीवेङ्कटेश जी के लिए ४५ करोड़ का मुकुट समर्पित	
१२.	नारायण की श्रेष्ठता एवं उनके अवतार का स्वरूप	
१३.	कुम्भमहापर्व का रहस्य	
१४.	श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य ही महाराज का महाप्रयाण स्थल	
१५.	विश्वमङ्गल गो-ग्राम यात्रा	
१६.	मुहूर्त्त निर्णय	
१७.	द्विरागमन मुहूर्त्त / गृहारम्भ मुहूर्त्त	
१८.	जीर्णगृहप्रवेश मुहूर्त्त	

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) २५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ४०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

सत्संग से मिला दिव्य-ज्ञान

किसी एक प्रदेश में एक ब्राहम्ण रहता था। उसका नाम वेदमालि था जो वेद वेदांगों का पारगमी विद्वान था। वह हरि पुजा का प्रेमी और सब प्राणियों पर दया करने वाला व्यक्ति था। कुछ समय के बाद वह पुत्र मित्र और स्त्री के पालन के लिए धन कमाने के फेर में पडा। अपन कुल-धर्म की ओर ध्यान न देकर उसने निषिद्ध वस्तुओ रस (मद्य) को बेचा। लोभ में पडकर चाण्डाल आदि से बात चीत करता और उनसे दान भी लेता था। पैस के लिए दुसरे के निमित तीर्थ यात्रा भी करता था। कुछ समय वीतने पर उसको यज्ञमाली और सुमाली नामक दो अत्यन्त सुन्दर जुडवां पुत्र उत्पन्न हुए। तदनन्तर वेदमाली ने उन दोनों पुत्रों को बडे प्यार से प्रत्येक सम्भवसाधनों से पालन पोषण किया। उसने बडे परिश्रम से अनेकों उपायों से धन कमाया। एक दिन वह अपनी उपार्जित सम्पति का ठीक-ठीक परिमाण जानने के लिए अपने धन को गिनने लगा। हजारों करोडों की संख्या में अपनी संम्पति को देखकर बहुत प्रसनन्न हुआ और फिर भी अर्थलोभ की और अपने मन को खिचाव देखकर विस्मित होकर सोचने लगा।

आश्चर्य है कि मैंनें असत् पात्रों दान लिया, निषिद्ध बस्तुओं को बेचा और तपस्या को बेंचा। इस प्रकार मैने इतनी संपति प्राप्त की परन्तु अब तक मुझको शान्ति नही मिली प्रत्युत दिनानुदिन दु:सह तृष्णा होती जाती है। सुमेरू के बराबर अस्त्रख्य सुवर्ण राशि की इच्छा होती है। यह बडे कष्ट की बात है और समस्त दु:खों का यही एक मात्र कारण है कि मनुष्य ज्यों-ज्यों नई-नई आकाँक्षायें बढ़ती जाती हैं। बुढ़ापे में बाल सफेद हो जाते है, दाँत टूट जाते हैं, आँखें और कान भी जबाब दे देते है परन्तु केवल एक तृष्णा ही तरूण होती जाती हैं,अर्थात बुढ़ापे में सब अगं तो शिथिल हो जाते पर तृष्णा बढ़ती ही जाती है। मेरी सब इन्द्रियाँ तो धीरे-धीरे थिथ्लि हो रही हैं ,बुढ़ापे के कारण शक्ति भी नही रह गई परन्तु केवल तृष्णा नवीन होती जा रही जिसको यह कष्टायिनी आशा (तृष्णा)हो जाती है चाहे वह विद्वान हो, पंडित हो, परमधीर हो परन्तु पह भी क्रोधी हो जाता है,बुद्धिान भी इसके आगे मूढ़ हो जाता है। आशा पुरूषों को विनष्ट करने वाली हैं, अजये है और शत्रु के समान घातक है, इसलिए शाश्वत सुखकी इच्छा करने वाले मनस्वी जन यदि अपना कल्याण चाहते हों तो तृष्णा को अवश्य छोड़ दें। बल, तेज, यश, विद्या, गर्प, वृद्धा और उसी प्रकार कुलीनता आदि को आशा शीघ्र नष्ट ऋर देती है। आशा के बन्धन में मनुष्यों की स्थिति देखेर आश्चर्य दके साथ कहना पड़ता है। कि थोड़ा धन दान करने वाले चाण्डाल से दान लेकर उन्होने अपने को चाण्डाल से भी हीन बना दिया।

जो मनुष्य आशा से अभिभूत, महामोह में पड़े मदोद्धत है वे अपमान आदि के दु:खों को भी नहीं जानते हैं। मैंने इसी प्रकार अत्यन्त कष्ट सहकर इतनी प्रचुर सम्पत्ति कमाई है, इसी कार्य में शरीर भी जीर्ण हो गया, बुढ़ापे से सारी शक्ति भी नष्ट हो गई। अब इसके बाद मैं अवश्य श्रद्धापूर्वक परलोक-कल्याण के लिए प्रयत्न करुँगा। ऐसा निश्चय कर वह धर्म-कार्यों में लग गया। उसी समय उसने अपने धन को चार भागों में बाँटा। अपनी अर्जित सम्पत्ति में से दो भाग स्वयं लिये और शेष दो भाग अपने दोनों पुत्रों को दे दिये। अपने किये हुए पापों को नष्ट करने के उद्देश्य से उसने बहुत स्थानों पर

प्याऊ बैठाए, धर्मशालायें, उपवन और देव-मन्दिर बनवाये, गङ्गा के तट पर अन्नदान की व्यवस्था की।

इस प्रकार अपना सारा धन हरिभक्तों को बाँट दिया और स्वयं नर नारायण के स्थान की ओर (बदरिकाश्रम) में तपस्या करने के लिए चला गया। वहाँ वन में जाकर उसने मुनियों से सुशोभित अत्यनत रमणीय आश्रम को देखा, जो फल-फूलों से लदे हुए मनोहर वृक्षों से और अधिक रम्य जान पड़ता था। उस आश्रम में परम ब्रह्म के गुणगान में निरत, शास्त्रचिन्तन में तल्लीन, भगवदाराधना में वेसुध वृद्ध तपस्वी मुनियों और शिष्यों से घिरे हुए जानन्ति नामक मुनि को देखा जिनकी सभी सेवा कर रहे थे और जो स्वयं परमब्रह्म का नाम जप करते हुए तेज पुँज के समान थे। शम आदि गुणों से युक्त, रागयुक्त और केवल सूखी पत्तियों को खाकर ही जीवन बिताने वाले उस मुनि को देखकर वेदमालि ने उन्हें प्रणाम किया और जानन्ति ने भी उस अतिथि वेदमाली का नारायण-भाव से कन्द-मूल-फल आदि के द्वारा सत्कार किया। वेदमाली मुनि का आतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् हाथ जोड़कर विनम्र भाव से उस वाग्मी शिरोमणि मुनि से बोला—

भगवान्! मैं कृतकृत्य हो गया, आपके दर्शन से मेरे सारे पाप दूर हो गए। अब आप ज्ञान की दीक्षा देकर मेरा उद्धार कीजिए। वेदमाली की इतनी बातें सुनकर वाग्मी मुनिवर हँस पड़े और उन्होंने उस गुणी अतिथि से कहा—

विप्रशार्दूल! सुनो मैं भव-बन्धन से मुक्त करने वाले उस ज्ञान को सङ्क्षेप में सुना रहा हूँ, जो अविवेकियों के लिए सर्वथा दुर्लभ है। विष्णु का नित्य प्रति भजन करो, प्रभु नारायण का स्मरण करो और परनिन्दा तथा पिशुनता कभी भी न करो, सदा परोपकार में लगे रहो, हरि पूजा को ही ध्येय समझो और मूर्खों की सङ्गति न करो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य को छोड़कर संसार को आत्मवत् समझो, ऐसा करने से तुम अवश्य शान्ति प्राप्त करोगे। असूया ओर परनिन्दा कभी न करो। दम्भ, अहङ्कार एवं निठुरता को छोड़ दो, प्राणियों पर दया करो, सज्जनों की सेवा करो और अपने किये हुए धर्मों को पूछने पर अपने मुँह से न कहो। अपने सामने अनाचार होते देखकर शक्ति रहते उपेक्षा न करो। अपने कुटुम्ब को कुछ हानि किये बिना अतिथि की नित्य सेवा करो। निष्काम भाव से पत्र, पुष्प, फल दूर्वा और पल्लव से विधिपूर्वक भगवान् की पूजा करो। विधिपूर्वक देव, ऋषि और पितरों का तर्पण करो। विधिवत् अग्नि की पूजा करो। देवमन्दिर में जाकर नित्यप्रति झाड़ू लगाओ और एकाग्र होकर उसको लीपो-पोतो। सदा देवमन्दिर की दरार या जीर्ण भाग की मरम्मत करो, विष्णु-मन्दिर में दीपक जलाओ और वन्दननार लगाकर द्वार को सजाओ। कन्दमूल, फल, प्रदक्षिणा, नमस्कार, स्तुतिपाठ आदि से माधव की पूजा करो। प्रतिदिन शक्ति के अनुसार पुराण श्रवण, पुराण पाठ और वेदान्त का अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने पर तुमको परमोत्तम ज्ञान प्राप्त होगा और ज्ञान द्वारा समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है यह निश्चित है।

मुनि से इस प्रकार का उपदेश पाकर महामति वेदमालि जो पहले अज्ञानान्धकार में ही डूबा रहता था, ज्ञान का एक हल्का-सा प्रकाश पा गया। किसी समय वह अपने उसी स्वल्पज्ञान की प्रेरणा से, मैं कौन हूँ, मेरा कर्त्तव्य क्या है आदि बातों पर विचार करने लगा। प्रतिदिन आलस्य त्यागकर यही सोचा करता था कि मेरा जन्म कैसे हुआ, मेरा स्वरूप क्या है? द्विजवर वेदमालि इन प्रश्नों का कोई निश्चित उत्तर न पाकर पुन: जानन्ति के पास आया और प्रणाम करके पूछा—

गुरुदेव! मेरा कर्त्तव्य क्या है, मुझे सन्देह हो

गया है कि मैं कौन हूँ, मेरा जन्म कैसे हुआ और आप कृपा करके इस सन्देह का निराकरण कीजिए?

जानन्ति बोले कि यह सत्य है, तुम्हारा चित्त भ्रम में पड़ गया यह निश्चित ही है। अज्ञान का स्थान चित्त भला कैसे सद्भाव प्राप्त करेगा। जो 'यह मेरा है' ऐसा कहा जाता है यह भी भ्रम है। अहङ्कार मन का धर्म है आत्मा का नहीं। फिर तुमने जो यह पूछा है कि 'मैं कौन हू' तो जाति आदि से शून्य आत्मा का नामकरण मैं कैसे कर सकता हूँ। तुम अपने कल्याण के लिए भगवान् नारायण के चरणों में विशुद्ध प्रेम करो उससे तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी।

'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' अर्थात् ब्रह्म के पास पहुँचने के लिए पराभक्ति ही होनी चाहिए। अतः तुम संसार की ओर से मन को मोड़कर नारायण के चरणों में लगा दो। महात्मा जानन्ति के उपदेश को सुनकर वेदमाली ने अनन्य भाव से श्रीमन्नारायण के चरणों का स्मरण करते हुए प्राकृत शरीर से मुक्त हो गये।

****

गुरु-शिष्य संवाद

शिष्य—गुरुदेव! जगत् में जितने अध्यात्मशास्त्र हैं, उनमें श्रीमद्भगवद्गीता प्रधान ग्रन्थ है, ऐसा मैंने सुना है। आप सब शास्त्र के मर्मज्ञ तथा परमदयालु हैं। अतः कृपाकर यह रहस्य बतलावें कि अन्य शास्त्रों की अपेक्षा गीता में कौन-सी विलक्षणता है?

गुरुजी—गीता एक ही शरीर में सम्पूर्ण विश्व की चीजों का दर्शन करा देती है। अन्य शास्त्रों में ऐसी विलक्षणता नहीं है।

शिष्य—हे दयालो! एक ही शरीर में विश्व का दर्शन कैसे करा देती है?

गुरुजी—सम्पूर्ण जगत् तीन तत्त्वों में विभक्त है–चित्, अचित् और ईश्वर। ये तीनों तत्त्व एक ही शरीर में रहते हैं।

शिष्य—गुरुदेव! चित् का अर्थ क्या है?

गुरुजी—चित् कहते हैं चेतन को जो जीवात्मा शब्द से जाना जाता है। यह नित्य, अणु, ज्ञानाकार एवं ब्रह्म का दास है। शरीर का नियामक, धारक और शेषी भी यही है।

शिष्य—गुरुदेव! आपने कहा कि जीवात्मा ब्रह्म का दास है; परन्तु कुछ लोगों से सुना हूँ कि जीवात्मा और परमात्मा एक ही तत्त्व है?

गुरुजी—सुनो जी! जैसे स्वामी-सेवक ये दानों एक नहीं हो सकते; क्योंकि स्वामी सेवक का नियामक, शासक एवम् उससे सेव्य होता है और सेवक-स्वामी के नियन्त्रण में रहकर उनके आदेशानुसार कैङ्कर्य करता है। अतः परतन्त्र है। वे दोनों भिन्न-भिन्न गुण और शक्ति के कारण एक नहीं कहे जा सकते। उसी प्रकार ब्रह्म और जीव में भिन्नता है; क्योंकि ब्रह्म जीव का नियामक, शासक एवम् उससे सेव्य है और जीव ब्रह्म के नियमन एवं शासन में रहकर काम करता है। ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं अनन्त दिव्य कल्याण गुणों से परिपूर्ण हैं। जगत् का स्त्रष्टा, पालक, संहारक सबों का फल प्रदाता एवं स्वरूपतः व्यापक है। जीवात्मा अल्पज्ञ, कर्माधीन, अणु तथा प्राकृत सत्त्वादी गुणों से युक्त है। गीता ब्रह्म और जीव को भिन्न तत्त्व के रूप में ही बतलाती है। जिसने गीता के रहस्य को नहीं जाना है, वही दोनों को एक कहता है।

शिष्य—गुरुदेव! आप जीव और ब्रह्म का भेद बतलाकर मुझे सन्तुष्ट कर दिये। उन दोनों के एक होने का जो मुझे भ्रम था वह निर्मूल हो गया। अब यह जानना चाहता हूँ कि अचित् किसे कहते हैं?

गुरुजी—अचित् का अर्थ होता है–जड़। उसे

ही प्रकृति भी कहते हैं। वह पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार–इन आठ रूपों में विभक्त है। अहङ्कार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ मन, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द–ये सब उत्पन्न होते हैं। इन सबों का समुदाय ही शरीर है। अत: शरीर को प्राकृत कहते हैं। प्रकृति तीन रूप में रहकर जीवात्मा के उपभोग में आती है—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द–ये पाँच विषय भोग के रूप में, ग्यारह इन्द्रियों के द्वारा जीवात्मा रूपादि विषयों को भोगता है। अत: इन्द्रियाँ भोग के साधन के रूप में और जिस स्थान पर रहकर जीवात्मा विषयों का भोग करता है वह प्रकृति भोग स्थान रूप में।

शिष्य—गुरुदेव! आपने अचित् तत्त्व का स्वरूप बतलाया। मैं उसे समझ भी गया हूँ; परन्तु एक शङ्का यह होती है कि प्रकृति का तो नाश हो जाता है। वह स्थायी रहने वाली है नहीं? फिर उसे एक तत्त्व के रूप में कैसे स्वीकार करते हैं?

गुरुजी—प्रकृति परिणामी है। उसकी अवस्था में परिवर्तन होता रहता है, किन्तु स्वरूपत: वह नष्ट नहीं होती है। सृष्टि और प्रलय रूप में प्रकृति बदलती रहती है। अभी वर्तमान में जो प्रथिव्यादि में रूप है और जिन नामों से उनका व्यवहार हो रहा है, प्रलयकाल में रूप और नाम से रहित होकर प्रकृति रहती है। इसलिये उस अवस्था का नाम है सूक्ष्मावस्था। जैसे–किसी भी वृक्ष के बीज में वृक्ष का स्वरूप तिरोहित रहता है, उसी प्रकार सूक्ष्म प्रकृति में उसका स्थूल रूप तिरोहित हो जाता है। सृष्टिकाल में सूक्ष्म प्रकृति ही स्थूल रूप को धारण कर लेती है। उस अवस्था में नाम-रूप का व्यवहार होता है। इसलिये प्रकृति के स्वरूप में परिवर्तन मात्र होता है।

शिष्य—गुरुदेव! सभी प्राणियों में रहने वाला जीवात्मा एक है या अनेक?

गुरुजी—तुम्हारा प्रश्न उत्तम है। जीवात्मा अनन्त हैं। प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न जीव रहता है। यहाँ ध्यातव्य विषय यह है कि जीवात्मा तीन प्रकार के होते हैं–नित्य, मुक्त और बद्ध। जो सदा वैकुण्ठ में रहकर भगवान की सेवा करते रहते हैं तथा जो कभी भी संसार में कर्मानुसार नहीं आये हैं। वे नित्य कहे जाते हैं। जो संसार से मुक्त होकर वैकुण्ठ चले गये हैं, वे मुक्त कहलाते हैं और जो संसार के बन्धन में पड़े हुए हैं, वे बद्ध कहलाते हैं। चौरासी लाख प्रकार के शरीरों में रहने वाले सभी जीव माया के बन्धन में हैं। इस तरह नित्य, मुक्त और बद्ध–ये तीनों प्रकार के जीव अनन्त हैं। अगर सभी शरीरों में एक ही जीवात्मा रहता तो एक शरीर में दु:ख होने पर संसार के समस्त प्राणी दु:खी और सुख होने पर सुखी हो जाते; परन्तु ऐसा नहीं होता। प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार से सुख-दुख का अनुभव होता है, अत: जीव अनेक हैं।

भगवती गीता भी जीव की अनेकता का ही प्रतिफल करती है। इस तरह एक ही शरीर में जीव, ब्रह्म और प्रकृति (माया) के स्वरूप और स्वभाव को समझ लेने पर संसार की सब चीजें समझ में आ जाती है। जैसे–एक शरीर में जड़ का जो स्वरूप है वही स्वरूप विश्व के समस्त जड़ पदार्थों का है। इसी तरह एक शरीरगत आत्मा का जो स्वरूप है वही स्वरूप समस्त आत्माओं का है। जैसे–एक शरीरगत जीवात्मा का नियामक, धारक और स्वामी ब्रह्म है। वैसे ही सभी जीवात्माओं के नियामक धारक एवं स्वामी वे ही हैं।

अत: प्रत्येक व्यक्ति गीता का अध्ययन करे। जैसे–प्रकाश में रहते हुए सीसा के अभाव में कोई मनुष्य अपनी मुखाकृति को नहीं देखता उसी प्रकार गीता के ज्ञान विना ब्रह्म, जीव, माया तथा स्वकर्त्तव्य आदि का समुचित ज्ञान नहीं कर सकता। इसलिए अपने जीवन को पूर्ण प्रकाश में लाने के लिए मनुष्य स्वयं पढ़े और वह अपने बालकों को गीता का ज्ञान कराये। आज दुर्भाग्य है इस भारतवर्ष का जो मानवता की सही शिक्षा देने वाली गीता का

कहीं भी पाठ्यक्रम में नहीं रखा गया है। सुना हूँ कि अमेरीका सरकार अपने राज्य के प्रत्येक वरीय शिक्षण संस्थाओं में गीता को पाठ्यग्रन्थ के रूप में निर्धारित कर दिया है। ऐसे भारत सरकार को भी चाहिए अपने शिक्षण संस्थाओं में गीता को पाठ्यग्रन्थ के रूप में निर्धारित करे।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता ।।

****

श्रीवैष्णवता का स्वरूप

आचार और विचार का अन्योन्याश्रम सम्बन्ध है। आचार विचार के चिन्तन से अपना पोषक द्रव्य ग्रहण करता है और विचार, आचार के रूप में अपनी परिणति प्राप्त करता है। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। जो आचार, विचार के द्वारा पुष्ट नहीं किया जाता वह अधुरा है, आधारहीन है, अपने को स्थिर रखने की क्षमता का उसमें नितान्त अभाव है। यह विचार भी दिमागी कसरत से बढ़कर नहीं हो सकता है, जो अपना पर्यवसान या अन्तिम लक्ष्य आचार के माध्यम से पुष्ट नहीं कर सकता। तथ्य तो यह है कि विचार की परिणति आचार के ही रूप में होती है। इस तथ्य का प्रति-पादक एक प्राचीन प्रख्यात श्लोक है, जिसमें 'पण्डित' की परिभाषा ज्ञानवान् होने की अपेक्षा आचारवान् होने में बतलायी गई है—

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं औषधमातुराणां
न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ।।

अनेक शास्त्रों को पढ़कर भी मनुष्य मूर्ख होता है। वहीं पुरुष विद्वान् कहलाता है, जो क्रियावान हो, आचारवान हो, जो पढ़ी वस्तु को क्रियात्मक रूप देता है। उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। रोगी लोगों को सुचिन्तित भी औषध क्या उसके नाम लेने मात्र से रोगहीन बना डालती है? कभी नहीं। उसके लिए आवश्यक है औषध का निर्माण, निर्मित औषधि की प्राप्ति और प्राप्त औषध का विधिवत सेवन। क्रिया के द्वारा ज्ञान की सफलता है। नहीं तो वह ज्ञान भार बन जाता है–ढोने की चीज, जिसका उपयोग ही नहीं हो पाता।

'ज्ञानं भारः क्रियां बिनां' इस शास्त्रीय वचन का यही परिनिष्ठित तात्पर्य है।

वैष्णव विचार का स्वरूप क्या है? भगवान के प्रति भक्ति-भावना का आदर्श तो उसके रोम-रोम में व्याप्त है। उसका सामाजिक आदर्श क्या? समाज के प्रति, जिसमें वह अपना दैनिक जीवन व्यतीत करता है, उसका क्या लक्ष्य है? इन प्रश्नों का उत्तर गम्भीरता से विचारने योग्य है। उत्तम भागवत का लक्षण शास्त्रों में नाना दृष्टियों से दिया गया है। सामाजि दृष्टि से उत्तम श्रीवैष्णव का लक्षण इस प्रकार है—

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ।।
(भाग०-११ स्क०)

श्लोक का तात्पर्य विचारणीय है। साधारणतया जीवों में, वित्त में तथा धन में भेदभाव का ही बोल-बाला है। यह मेरा लड़का है, यह दूसरे का है। यह सम्पत्ति मेरी है, यह दूसरे की है–यह तो हमारा नित्य का अनुभव है; परन्तु उत्तम वैष्णव इसमें भेदभाव नहीं रखता। वह स्व और पर का इन विषयों में भेद नहीं मानता। अपने परिश्रम से कमाई सम्पत्ति में भी अपना ही पूर्ण अधिकार नहीं मानता। समाज में रहकर वह उसे कमाने में समर्थ होता है, फलतः वह समाज के मानवों को भी उस

सम्पत्ति में हकदार मानता है। वह सब भूतों से बराबर का व्यवहार करता है तथा जो कामनाओं के द्वारा अशान्त न होकर सन्तोष से अपने में शान्ति बनाए रखता है वह होता है भागवतों में (अर्थात् भगवान् के सेवक भक्तों में) उत्तम (श्रेष्ठ वैष्णव)।

कांचन के व्वहार में शुचि होना ही वास्तव में शुचिता की कसौटी है। रुपयों के मामले में बड़ों-बड़ों को फिसलते हम नित्य देखते हैं। एषणा के विविध रूपों में धनैषणा अपनी प्रमुखता रखती ही है। ऐसी दशा में जो व्यक्ति अपने धन को स्वयं ही भोजन न मानकर दूसरे के लिए निष्ठापूर्वक रखता है, उससे बढ़कर किस व्यक्ति का व्यवहार शुद्ध हो सकता है? ***'यो वै अर्थशुचिः सशुचिः'*** अर्थ में शौच ही वास्तव में शौच है। फलतः वैष्णव-जन का आदर्श इस तथ्य को मानकर प्रवृत्त होता है। महर्षि वेद-व्यास उक्त विषय को निम्न श्लोक से अभिव्यक्त करते हैं—

यावद भ्रियते जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।
(भाग०-७/१४/८)

समस्या है–धन में प्राणिणें का अधिकार कितना? मीमांसा है–जितने से प्राणी का पेट भरता है, उतने ही धन में उसका स्वत्व है–अपनापन है–स्वकीय कहने का अधिकार है। उससे अधिक में जो व्यक्ति अपना अधिकार मानता है, वह स्तेन चोर है। सामाजिक दृष्टि से दूसरे के स्वत्व को चुराने वाला है और इस प्रकार वह दण्ड के योग्य है, सम्मान के योग्य नहीं। भागवत का वह सामाजिक आदर्श तभी चरितार्थ हो सकता है, जब प्रजा पूर्वोक्त वैष्णवता के तथ्य को मानने के लिए कृत-सङ्कल्प हो सर्वभूत समता ही वैष्णव धर्म का आदर्श है और उसका पालन करने वाला व्यक्ति ही यथार्थतः परम शुचि हो सकता है।

'वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे पीर पराई जाणै रे' किसी भक्त का यह कथन भी पूर्वोक्त आदर्श को ही आधार-भूमि पर खड़ा है। यह दशा कब चरितार्थ होगी? जब भागवत के अनुसार प्राणी स्व और पर जीवों में किसी प्रकार का भेद नहीं जानेगा। स्वार्थ का इतना बड़ा साम्राज्य हे इस जगती-तल पर कि हम आत्मीय के अतिरिक्त परकीय के प्रति अपना ध्यान ही आकृष्ट नहीं करते। जब देखो, तब अपने में ही लगे रहते हैं। अशन (भोजन) मेरा ही है, वसन, दारा तथा बन्धुवर्ग सब तो मेरे ही हैं। इस प्रकार मेरा-मेरा करते हुए व्यक्ति को काल खा जाता है, ठीक उस भेड़िये के समान, जो मैं-मैं करने वाले बकरे को फाड़कर खा जाता है। 'मम' ही तो बन्धन हैं, 'न मम' ही तो छुटकारा है। वैष्णव जन का तो यही आदर्श है—'न मम' 'न आत्मनि भिदा'।

अहिंसा वैष्णव धर्म का प्राण है। ***'सर्वभूत समः, 'सर्वभूतहिते रताः'*** आदि विशेषण वैष्णव जन के लिए शास्त्रों में आते हैं। सब प्राणियों को बराबरी की दृष्टि से देखने वाला व्यक्ति 'सर्वभूतसमः' (***सर्वेषु भूतेषु समः***) होता है और इसी प्रकार सब भूतों के हित में नितर रहने वाला व्यक्ति वैष्णव की महनीय पदवी को धारण कर सकता है। वैष्णव होना कोई साधारण-सी बात नहीं है। जब तक वह व्यक्ति सब प्राणियों के प्रति समत्व की तथा हित कामना की भावना नहीं रखता। 'सर्वभूतसमः' प्राणी क्या किसी से द्वेष कर सकता है? क्या वह कभी किसी का अनिष्ट चिन्तन कर सकता है? क्या वह किसी की बुराई करने पर तैयार हो सकता है? नहीं, कभी नहीं। भगवान् विष्णु ठहरे सत्वप्रधान देवता, विश्व के पालन-पोषण करने वाले देवता। उनकी भक्ति में निमग्न होने वाला व्यक्ति कभी हीनता की भावना से दुःखित नहीं होता। वह जानता है कि भगवान् लक्ष्मी की, उनके याचक राजाओं की तथा देवों की परवाह नहीं करते; परन्तु वह अपने भक्तों के पराधीन रहते हैं। ऐसी दशा में वह कृतज्ञ भक्त भगवान् को कैसे छोड़ सकता है?

श्रियमनुचरती तदर्थिनश्च,

द्विपदपतीन् पितुधांश्च यः स्वपूर्णः ।
न भजतिं निजभृत्यवर्गतन्त्रः,
कथममुम् उद्विसृजेत् पुमान् कृतज्ञः।।

तात्पर्य यह है कि सच्चा वैष्णव जन, जन के भीतर भगवान् का ही विग्रह देखता है, वह समस्त विश्व को आत्मीय समझता है, तब उसका सामाजिक व्यवहार असन्तुलित कैसे हो सकता है? व्यवहार में शुचिता की मर्यादा रखना वैष्णव खूब जानता है। वह स्वयं शुचि होता है, भीतर से और बाहर से। बाह्य-शौच तथा आन्तरिक शौच सम्पन्न होने वाला विष्णु भक्त कभी भी अन्याय या अनीति का तथा दुराचार का पल्ला नहीं पकड़ता। वह सबसे समरत बर्ताव करता है। ऊपर आरम्भ में कहा गया है कि विचार परिणति आचार में ही होती है। फलतः विष्णु की भक्ति से सम्पन्न व्यक्ति अपने आचार में सदा उदार रहता है, दूसरों के दुःख से दुःखी होकर वह सहानुभूति से स्निग्ध रहता है तथा आचार की पवित्रता का पूर्णतः पालन करता है।

पाठकों से प्रार्थना है कि वैष्णव के इस सामाजिक व्यवहार की पवित्रता का मूल्याङ्कन करना सीखें और सच्चा वैष्णव बनने का पूर्ण प्रयत्न करें। तीव्र कामना अवश्यमेव फलवती होती है। स्मरण करने पर भगवान् भक्त के हृदय में प्रवेश कर उसके पापों को दूर कर देते हैं तथा उसे निर्मल बना देते हैं, जिससे उसका व्यवहार स्वजनों तथा परजनों के साथ समरस होता है।

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य,
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोम्पतितं कथञ्चित्,
धुनोति सर्वे हृदि सन्निविष्टः ।।

****

साम्यवाद का रहस्य

जगत् में आर्थिक, वैचारिक, बौद्धिक और पारिवारिक समता सम्भव नहीं है। आर्थिक समानता की चर्चा करने वाले अभी तक एक ग्राम में भी समता नहीं ला सके। किसी में अधिक अर्थ संग्रह की क्षमता है और किसी में कम, फिर दोनों की समानता कैसे हो सकती? जगत् त्रिगुणात्मक है। सत्व, रज और तम से बना हुआ है। लोगों में गुण के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार का विचार होता है। कोई व्यक्ति सत्त्वगुण प्रधान, कोई रजोगुण प्रधान और कोई तमोगुण प्रधान होता है। लोगों में गुण के अनुसार विचार में भी भिन्नता होती है। उन्हीं गुणों के अनुसार सात्त्विक, राजस और तामस–तीन प्रकार के ज्ञान भी होते हैं। अतः ज्ञान में समानता भी सम्भव नहीं हो सकती है। इसी प्रकार परिवार में भी विषमता रहती है। ऐसी स्थिति में सभी प्राणियों में समानता किस दृष्टि से कही गयी है। गीता कहती है—

विद्या विनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शूनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः ।।

विद्या-विनय सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी तथा चाण्डाल आदि को समान रूप में देखें।

प्रश्न—ब्राह्मण, गौ, हाथी तथा चाण्डाल आदि को बाह्य आकृति, उनका आहार, उनकी भाषा तथा चेष्टा आदि में विषमता रहती है, फिर किस दृष्टिकोण से उन सबों को समान रूप में देखने के लिए कहा गया है?

उत्तर—सारे प्राणियों के शरीर प्राकृत है। प्रकृति के परिणाम होने के कारण शरीर की आकृतियों में विषमता है; परन्तु सब शरीरों को क्रियाशील बनाने वाला जीवात्मा है। वह शरीर से भिन्न तत्त्व है। यह जीवात्मा का स्वरूप सब शरीरों में समान है। जीवात्माओं की आकृति में विषमता नहीं है। ब्रह्मा से कीटाणुपर्यन्त सभी शरीरों में रहने वाले

जीवात्मा अुण, अव्यक्त, अचिन्त्य, नित्य, शाश्वत और ज्ञानस्वरूप है। जो पण्डित आत्मज्ञानी होते हैं, वे मनुष्य, हाथी, गौ, कुत्ते आदि में रहने वाली आत्माओं को इसी रूप में देखते हैं। अतएव वैसे पण्डित समदर्शी कहे जाते हैं।

भगवान गीता के छठे अध्याय के २९वाँ श्लोक से सभी प्राणियों को समान रूप से देखने की रीति बतलायी है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।

जैसे एक ही आकार की एक सौ पुस्तकें हैं। उनमें एक पुस्तक का जो आकार है वही आकार अन्य पुस्तकों का भी है। ऐसी स्थिति में एक पुस्तक में सब पुस्तकों का आकार देखा जाता है। उसी प्रकार जब सब आत्माओं का आकार एक ही समान है, तब एक आत्मा के आकार को सबमें और सब आत्मा के आकार को एक में देखना स्वाभाविक सिद्ध हो जाता है। 'सर्वत्र समदर्शनः' भगवान के इस वाक्य से एक जीवात्मा को देख लेने पर सब जीवात्मा उसी के समान होने के कारण सम्पूर्ण प्राणिगत जीवात्मा देख लिये जाते हैं, साम्यवाद के रहस्य का अनुभव साधारण लोगों को नहीं होता है। जो योगी योग साधन में सफल हो जाता है, वह शरीर की विषमता को भूलकर आत्मा की समानता को समझता है। योगी की दृष्टि आत्मदर्शन में लग जाती है। वैसे योगी साम्यवाद के रहस्य को समझते हैं उन योगियों की चार अवस्थायें होती हैं—

१. सब प्राणियों में अपनी आत्मा को और अपनी आत्मा में सब प्राणियों को देखना।
२. सब जीवात्माओं में परमात्मा को और परमात्मा में सब जीवात्माओं को देखना।
३. प्राकृत सम्बन्ध से रहित सब जीवात्माओं में एक परतात्मा का दर्शन करना।
४. जैसे दूसरे के पुत्र को जन्म-मरण में हर्ष-विषाद का अनुभव नहीं होता है वैसे ही अपने पुत्र के जन्म-मरण में भी हर्श-विषाद का अनुभव नहीं करना।

जिस व्यक्ति को आत्म साक्षात्कार नहीं हुआ हो वह यदि साम्यवाद की चर्चा करता हो तो उसकी चर्चा को हास्यास्पद समझना चाहिए।

****

अध्यात्म ज्ञान का उदय स्थल भारत है

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

सृष्टिकर्त्ता परब्रह्म परमात्मा श्रीहरि परम दयालु, कृपालु और समदृष्टि हैं। ऐसा होने पर भी उनकी सृष्टि में कोई सुखी है, कोई दुखी है, कोई पर दुःखहारी परोपकारी है तथा कोई क्रूर अत्याचारी है–इस प्रकार की विषमता का क्या कारण है? प्रायः सारी सृष्टि पर अचानक सङ्कटों का पहाड़ क्यों टूट रहे हैं? क्यों घोर पीड़ाओं की भीषण तरङ्गें उछल रहीं हैं? इस प्रकार की विलक्षण स्थिति उत्पन्न होने के कारण क्या है? ऐसे प्रश्न सहज ही उपस्थित हो सकते हैं।

सूक्ष्मबुद्धि से तथा शास्त्रदृष्टि से विचार करें तो परब्रह्म परमात्मा श्रीहरि तो आनन्दस्वरूप ही हैं। उनको क्रीड़ा करने की इच्छा हुई। क्रीड़ा अकेले में हो नहीं सकती थी, इसलिये उन्होंने विविध प्रकार की सृष्टि आनन्द देने और आनन्द लेने के लिए रच ली। सृष्टि के जीव व्यवस्था का पालन करके इस लोक में सुख भोगे तथा परलोक में सदा-सर्वदा आनन्द प्राप्त कर सके, इसके लिए जगत् के कर्त्ता परमात्मा ने अपना स्वरूप, सनातन धर्म प्रकट करके वेदशास्त्र के द्वारा आज्ञा (आदेश) कर उद्धार

का अनुपम मार्ग दिखला दिया। जीव जब तक वेद-शास्त्र की आज्ञा के अनुसार चला, तब तक स्वर्ग से भी बढ़कर सुख इस संसार में भोग सका; परन्तु जब भगवद् आज्ञा का भङ्ग, उच्छेद या अवहेलना करके मनमानी रीति से बतरने लगा, तब दु:ख-दारिद्र्य, अन्नाभाव, असह्य, महंगी, युद्ध विप्लव, रोग-क्लेश आदि महासङ्कट आ उपस्थित हो गये जिसे आज सबलोग प्रत्यक्ष देख और अनुभव कर रहे हैं। अब हमको विचार करना है कि उस सर्वोद्धारक ईश्वर स्वरूप सनातन धर्म का स्वरूप क्या है?

सनातन धर्म का भव्य और दिव्य सिद्धान्त जिसके आधार पर सचराचर विश्व टिका हुआ है तथा सारे लोक नियम में बर्तते हैं एवं जो इहलोक में परमपद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कराता है, वह एक मात्र सनातन धर्म ही है। यह सनातन धर्म ईश्वर स्वरूप है; क्योंकि यह स्वयं ईश्वर के द्वारा प्रवर्तित है। जिस प्रकार ईश्वर का आदि, मध्य और अन्त नहीं है, वैसे ही सनातन धर्म का भी आदि-अन्त नहीं है अर्थात् वह अनादि है, प्राचीन-से-प्राचीन है, सदा एक-सा चला आ रहा है, उसमें कभी परिवर्तन या विकार नहीं होता। इसी कारण वह सनातन धर्म कहलाता है। यह धर्म ईश्वरनिर्मित है, अतएव ईश्वर ही इसका स्वामी है। आसुरी वृत्ति के स्वार्थी, नास्तिक और निरङ्कुश लोग जब-जब सनातन धर्म या उसके अङ्गरूप वेदशास्त्र की मर्यादा, वर्णाश्रम, भक्तजन, सती स्त्रियाँ, गौ तथा धर्म के सिद्धान्तों पर आघात प्रत्याघात करते हैं और धर्मपरायण लोग दु:ख और उत्पीड़न के शिकार बनकर आर्तनाद करके पुकार उठते हैं, तब-तब जगन्नियन्ता ईश्वर अजन्मा होने पर भी अवतार लेकर सनातन धर्म की, धर्मज्ञान की तथा गौओं की रक्षा करके दुष्ट अधर्मियों को दण्ड देकर पुन: धर्म की संस्थापना करते हैं। अब सनातन धर्म के सिद्धान्तों की उत्कृष्टता पर विचार कीजिए।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

प्राणी मात्र सुखी रहें, सब निरोग रहें, सबका कल्याण हो, कभी किसी को दु:ख न हो।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति।।

जो परस्त्री को माता के समान, परद्रव्य को मिट्टी के ठेला के समान और प्राणिमात्र को अपनी आत्मा के समान देखता है वही ठीक देखता है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

ईश्वर प्राणिमात्र के हृदय में विराजमान हैं।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

यह अपना है या पराया–ऐसा विचार छोटी बुद्धि वाले मनुष्य का होता है; परन्तु विशाल हृदय वाले मनुष्य के लिए सारा जगत् तो अपना कुटुम्ब है।

संसार में सब लोगों के लिये इस प्रकार श्रेष्ठ सद्भावना रखने के कारण सनातन धर्म ही सार्वभौम धर्म अथवा मानव धर्म अर्थात् विश्व का उद्धार करने वाला धर्म है और उसका अनुसरण करके मानव-मात्र कृतार्थ हो सकता है।

****

सामान्य और विशेष धर्म

सनातन धर्म के अन्तर्गत सामान्य धर्म और विशेष धर्म निरूपण किये गये हैं। धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, सहनशीलता, विद्या, सत्य और अक्रोध–ये मनुमहाराज कथित दस सामान्य धर्म के लक्षण हैं। इनका आचरण सब जाति, धर्म या राष्ट्र के लोग कर सकते हैं; परन्तु विशेष धर्म जो वेद में तथा श्रीमद्भगवद्गीता में मैं साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण ने चारों वर्णों के लिये निरूपण किये हैं, वे अत्यन्त रहस्यमय विशुद्ध धर्म केवल हिन्दुओं के लिये ही अपने-अपने वर्ण

के अनुसार पालनीय हैं और उनका पालन करके हमें अपनी-अपनी संस्कृति का, धर्म का, देश का तथा मानवमात्र का उत्कर्ष और उद्धार करना है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।।

भगवान् नारायण के मुखारविन्द से ब्राह्मण, बाहू से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि गुण और कर्म के विभाग के अनुसार चार वर्णों को मैंने सिरजा है। उनके कर्ता मुझ अविनाशी परमेश्वर को तुम अकर्ता ही जानो।

इसी प्रकार लोगों के श्रेय और प्रेय के लिये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास नामक चार आश्रमों की अनुपम व्यवस्था की गई है। ब्राह्मण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम में रहकर ब्राह्मणधर्म का आचरण करे तो उसको ज्ञानबल, तपोबल, उपासनाबल तथा योगबल से ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाता है। फिर सम्पूर्ण जगत् उसकी आज्ञा में रह सकता है। वह ब्राह्मण द्विजवर्ण के बालकों को अपने घर, आश्रम में सदाचारी बनाकर अधिकार के अनुसार बिना एक पैसा भी लिये उन्हें निःशुल्क विद्यादान कर सकता है। ऐसा होने पर आलकल के निर्माल्य गुलाम कर्मचारी तैयार करने वाली शिक्षापद्धति के पीछे जो प्रति करोड़ों रुपये खर्च हो रहे हैं वे बच सकते हैं। माता-पिता फीस के भारी बोझ से और स्वेच्छा-चारिता के भारी डर से बच सकते हैं।

क्षत्रिय धर्मशास्त्र, राजनीति तथा अस्त्र-शस्त्र सञ्चालन या ज्ञान प्राप्त करें तो धनुर्वेद तथा शक्ति सामर्थ्य से राज्य और प्रजा का रक्षण करके उच्छृङ्खल और अत्याचारी लोगों को कठोर दण्ड देकर देश में सुख-शान्ति का प्रसार कर सकते हैं। इनसे सेना के प्रबन्ध में जो करोड़ों, अरबों रुपये प्रतिवर्ष खर्च हो रहे हैं, वे बच सकते हैं। वैश्य यदि धर्म ज्ञान तथा राजनीति के साथ उद्योग, व्यवसाय, खेती-बारी तथा गाय के रक्षण-पोषण का कार्य करके प्रचुर धन कमाये और फिर उस धन का उपयोग जहाँ-तहाँ न करके धर्मात्मा ब्राह्मणों के वेदाभ्यास में, तत्त्वज्ञान के शोधन तथा प्रयोग के महत्कार्य में, विद्यालयों, पाठशालाओं, अन्नक्षेत्रों, मन्दिरों, कूप-तडागों, बावड़ियों, गोशाला, अग्निहोत्र, होम-हवन, सनातन धर्म तथा हिन्दुओं की रक्षा में उपयोग करें तो सनातन धर्म का पुनः उदय हो और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा करने के साथ-साथ शिल्प-विद्या के अनुसार नाना प्रकार के गृह-उद्योग अपने-अपने घर चलाये तो द्रारिद्र्य तुरन्त दूर हो जाय। किसी मनुष्य की कृति नहीं है। यह अपौरुषये होने के कारण साक्षात् भगवान नारायण का ही स्वरूप है।

वेद के कर्म, उपासना तथा ज्ञान–ये तीन काण्ड हैं, इन तीनों काण्डों का मनुष्यमात्र को, जो दिन-रात शाश्वत सुख-शान्ति और आनन्द की प्राप्ति तथा दुःख-क्लेश और त्रास का निवारण करने की चेष्टा करते है, परमश्रेय का सत्य मार्ग दिखलाना है। भगवत्प्रीत्यर्थ यज्ञ-याग, होम-हवन करके, देवताओं को प्रसन्न करके, जगत् के लोगों को धन-धान्य, वैभव प्रदान करके स्वर्ग का अधिकारी बनाना यह कर्मकाण्ड का विधान है। जगन्नाथ श्रीहरि की अनन्य भक्ति श्रद्धापूर्वक करके भगवत्कृपा प्राप्त करना यह उपासनाकाण्ड का आशय है।

संसार के सब पदार्थों तथा प्रिय से प्रिय अपने शरीर तक को क्षणभङ्गुर दुःखदायी और नाशवान् मानकर, सबकी मोह-ममता त्यागकर शाश्वत सुख-शान्ति आनन्द के धाम एकमात्र सर्वशक्तिमान् भगवान श्रीहरि ही हैं, जहाँ सूर्य-चन्द्र प्रकाश नहीं कर सकते; परन्तु सूर्य-चन्द्र और अग्नि जिनकी कृपा से प्रकाशित होते हैं और जहाँ जाने पर इस संसार के दुःखमय आवागमन के चक्र में पुनः नहीं आना पड़ता, जीवात्मा को इसका ज्ञान कराकर जीव का

उद्धार करना यह ज्ञानकाण्ड उपनिषद् का लक्ष्य है।

विविध धर्मशास्त्रों की रचना का हेतु वेदों का ज्ञान अत्यन्त गहन है तथा वह अधिकारी पुरुष को ही प्राप्त हो सकता है। इसलिये परम दयालु ऋषि-मुनियों ने लोक-कल्याण के लिए तपश्चर्या योग साधन तथा अत्यन्त उग्र आराधन करके वेद का गुह्य ज्ञान श्रवण तथा स्मरण के द्वारा प्राप्त किया। तदनन्तर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद को चार उपवेद आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद तथा शिल्पवेद के द्वारा प्रकट किया। साथ ही सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग-मीमांसा और ब्रह्मसूत्र के द्वारा समझाने की कृपा की।

इसी प्रकार वेद के छः अङ्ग—शिक्षा, कल्प, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष और व्याकरण के द्वारा दर्शाने की कृपा की तथा ईश, केन, कठ, मुण्डक, प्रश्न, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक आदि उपनिषदों के द्वारा प्रतिपादन किया। फिर मनु, अत्रि, विष्णु, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, पराशर, शङ्ख, लिखित, वृहस्पति आदि स्मृतियों द्वारा मनों में उतारने का प्रयत्न किया। रामायण और महाभारत जैसे श्रेष्ठतम, सर्वज्ञान सम्पन्न अनुपम इतिहासों द्वारा लोगों के हृदयों में बैठाने का आयोजन किया और इतने से ही न रूककर अत्यन्त महत् अनुकम्पा दिखलाकर श्रीमद्भागवत, विष्णु, ब्रह्म, शिव, पद्म, स्कन्द, वामन, नारद, वराह, मार्कण्डेय, मत्स्य तथा गरूड़ आदि पुराणों के द्वारा वेद के ज्ञान को सर्वग्राह्य बनाकर हिन्दू जाति, धर्म और संस्कृति को जीवित रखकर अनन्त जीवों का उद्धार किया और अब भी कर रहे हैं।

****

केशवादि द्वादश नामों के अर्थ

त्रिविध तापों से सन्तप्त मानव के कल्याणार्थ भगवान का पूजन आवश्यक है। भगवान के पाँच स्वरूप हैं–पर, व्यूह, वैभव, अर्चा और अन्तर्यामी। इनमें उपासना के लिए सर्व-सुलभ अर्चा मूर्ति होती है। जैसे तालाब का जल सबके लिए उपयोगी होता है। कोई भी व्यक्ति तालाब में प्रवेश कर अपनी पिपासा शान्त कर सकता है, उसी प्रकार अर्चा-मूर्ति के समक्ष उपस्थित होकर उनका पूजन, स्तुति, कीर्तन, भजन, प्रदक्षिणा, प्रणामादि करके कोई भी मानव त्रिविध तापों से निवृत्ति पा सकता है। इसलिए भगवान का अमृत-मय वचन है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्याप्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

अर्थात् जो मानव पत्र, पुष्पादि वस्तुओं को प्रेमपूर्वक प्रभु के चरणों में समर्पित करता है, भगवान उसे सानन्द स्वीकार करते हैं।

भगवान ने अपनी उपासना में सर्वप्रथम पत्र का ही स्थान दिया है। पत्र से तुलसी-पत्र समझना चाहिए; क्योंकि भगवान् को प्रसन्न करने के लिए उनके सबसे प्रिय तुलसी-पत्र ही हैं। जो प्रेम पूर्वक तुलसी-पत्र प्रभु के चरणों में समर्पण करता है, प्रभु उसके वश में हो जाते हैं। इसलिए भगवत्पूजन के समय अर्चा स्वरूप भगवत् चरणारविन्द में तुलसी-पत्र समर्पण किये जाते हैं। भगवान के सुप्रसिद्धि निम्नलिखित बारह नामों से उनके चरणों में तुलसी-पत्र समर्पण करें।

ॐ केशवाय नमः	ॐ नारायणाय नमः
ॐ माधवाय नमः	ॐ गोविन्दाय नमः
ॐ विष्णवे नमः	ॐ मधुसूदनाय नमः
ॐ त्रिविक्रमाय नमः	ॐ वामनाय नमः
ॐ श्रीधराय नमः	ॐ हृषिकेशाय नमः
ॐ पद्मनाभाय नमः	ॐ दामोदराय नमः

अर्थ ज्ञानपूर्वक इन नामों से तुलसी दल समर्पण करने में भगवान को विशेष प्रसन्नता होती है। अतः

इन बारह नामों का अर्थ अङ्कित कर दिये जा रहे हैं—

केशव—इसके तीन अर्थ होते हैं—

(१)क = ब्रह्मा, ईश = शङ्कर। ये दोनों देव जिसके शरीर से उत्पन्न हुए हैं। हरिवंशपुराण में भगवान ने श्रीशिवजी से केशव शब्द का ऐसा ही अर्थ बतलाया है—

क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्व देहिनाम्।
आवां तवाङ्गे सम्भूतौ तस्मात्केशव नामवान्।।

(२) सुन्दर केश वाले।

(३) केशि नामक असुर को वध करने वाले।

नारायण—इसके भी तीन अर्थ हैं—

(१)नार = जल, अयन = निवास स्थान। सृष्टि के प्रारम्भ में जिन्होंने जल को अपना निवास स्थान बना लिया है अर्थात् जल में शयन करने वाले।

(२)नित्य पदार्थ (जड़-चेतन समुदाय) को नार कहते हैं, अयन = रहने का स्थान। भगवान समस्त जड़-चेतन रूप जगत् में व्याप्त होकर रहते हैं। इसलिए भगवान नारायण कहलाते हैं। अर्थात् व्यापक तत्त्व।

(३)नारा = जड़-चेतन समूह उसके अयन आधार नारायण हैं। अर्थात् समस्त जड़-चेतन रूप जगत् का जो आधार है, उसको नारायण कहते हैं।

माधव—इसके दो अर्थ हैं—

(१)मा = लक्ष्मी, धव = पति। अर्थात् लक्ष्मीपति (लक्ष्मी के स्वामी)।

(२)मा = ब्रह्मविद्या, धव = पति। अर्थात् ब्रह्म विद्या के स्वामी (ब्रह्म विद्या से जानने योग्य)। इसकी परिपुष्टि हरिवंशपुराणमें की गयी है—

मा विद्या च हरेः प्रोक्ता तस्मा ईशो मतो भवान्
तस्मान्माधव नामासि धवः स्वामीति शब्दितः।

गोविन्द—इसके तीन अर्थ हैं—

(१)गो = पृथ्वी, विन्द = धारण करने वाले। वाराह रूप से पृथ्वी को धारण करने वाले।

(२)गायों का स्वामी।

(३)गो = वेदवाणी, विन्द—उससे प्राप्त होने वाले।

विष्णु—इसके दो अर्थ हैं—

(१)सब काल, सब देश और सब वस्तु में निरन्तर व्याप्त होकर रहने वाला व्यापक तत्त्व।

(२)जिसकी शक्ति से सब शक्तिमान् बने हुए हैं।

मधुसूदन—मधु नामक दानव का वध करने वाले।

त्रिविक्रम—इसके दो अर्थ हैं—

(१)तीन लोकों का उल्लङ्घन करने वाला अर्थात् वामनावतार में तीनों लोकों को नाम लेने वाला।

(२) उत्पत्ति, पालन और संहार–इन तीन पराक्रम वाला।

वामन—राक्षस वलि को स्वर्ग से हटाने के लिए छोटा (बौना) रूप धारण करने वाले विष्णु।

श्रीधर—श्री = लक्ष्मी, उसे छाती पर धारण करने वाले।

हृषिकेष—इसके दो अर्थ होते हैं—

(१)हृषि = इन्द्रिय, ईश = स्वामी, इन्द्रियों के स्वामी।

(२)सूर्य चन्द्र के रूप में अपने केश रूप किरण से जगत् का उपकार करने वाले।

सूर्याचन्द्रमसोः शश्वदंशुभिः केशसंज्ञितैः।

पद्मनाभ—जिनकी नामि में जगत् का कारण रूप कमल है।

दामोदर—दाम = रस्सी, उदर = पेट।

जिसके पेट में रस्सी लगी है (यशोदा जी कृष्ण के पेट में रस्सी लगाकर उखल में बाँधी थी। उसी समय से भगवान का नाम दामोदर हुआ।

****

आध्यात्मिक ज्ञान का उदय हुआ भारत में

भारत अध्यात्म की जन्मभूमि है। इस बात को केवल भारतीय ही नहीं, अपितु विश्व के सभी धर्मावलम्बियों ने स्वीकार किया है। प्राचीन काल से अद्यावधि इतिहास भी इसका प्रमाण है। वैदिक युग से आज तक भारत का एक अविच्छिन्न जीवन रहा है, जिसमें वह आत्मा की शक्ति का विकास करता आया है। अध्यात्म या आत्मा की इस शक्ति पर आधारित भारतीय संस्कृति ही मानव जाति को बचा सकती है।

भारतीय संस्कृति किसी एक देश की सङ्कीर्ण संस्कृति नहीं है, बल्कि अपने विचार द्वारा निहित एक सार्वभौमिक जीवन पद्धति है। केन्द्रीभूत विचार उद्घाटित तो अनेक देशों में हुआ है, किन्तु इसकी अनुभूति जितनी इस देश में हुई है उतनी और किसी देश में नहीं। अस्तु; ऐसी भारतीय संस्कृति का फूलना-फलना न केवल भारत के लिए बल्कि सम्पूर्ण संसार के लिए आवश्यक है। भारत का आध्यात्मिक नेतृत्व मानव जाति के सफल जीवन का एक मात्र आशा है।

भारतीय संस्कृति और धर्म इस अर्थ में समष्टिगत नहीं है कि वह जीवन के विभिन्न उपखण्डों में विभाजित प्रणालियों को लेकर रची गई जीवन पद्धति है, बल्कि वह समष्टिगत इस अर्थ में है कि उसने अनेक स्तोतों से प्रेरणा ली है और उसका रूपाङ्कन अनेक प्रभावों से हुआ है। फिर भी वह एक अखण्ड जीवन-पद्धति है और उसका एकाङ्ग दृष्टिकोण है उसके अपने एक तरह के मूलभूत गुण है, उसका अपना एक विशिष्ट विचार है, जो जीवन के साथ प्रवहमान गुणों की रचना करता है और उनको निर्देशित करता है।

इतिहास के प्रभाव के पूर्व ही इस संस्कृति ने धर्म के केन्द्रीभूत विचार का विकास कर लिया था। इसने मानव प्रयास, संयम, आत्म-अनुशासन और तप में एक अडिग आस्था का विधान किया है। धर्मग्रन्थों के उपदेशों और विश्वासों पर जोर देने की अपेक्षा व्यक्तिगत अनुभव तथा योग्यता पर जोर दिया गया है। मनुष्य जब अपनी सङ्कीर्णताओं का परित्याग कर देता है और अपने जीवन में देव तुल्य हो जाता है तभी उसे सिद्धि मिलती है। धार्मिक विश्वासों तथा सामाजिक विधि-विधानों की अनेकता के बीच से होते हुए भी नैतिक व्यवस्था के प्रथम पक्षों में उसके नैतिक व्यवस्था के पालन पर जोर दिया गया है। इन प्रथम पक्षों का प्रतिनिधित्व महाव्रतों–सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह तथा संयम द्वारा होता है। नैतिक व्यवस्था का पालन अध्यात्म जीनवन की और मनुष्य की प्रगति में आवश्यक कदम है। अत: मानव व्यवहार तथा दृष्टिकोण को उन आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों द्वारा नियमिति और सदभावान्वित करना होगा जो इस लक्ष्य की ओर ले जाने वाले होते हैं।

भारतीय संस्कृति का मूल विचार, जो युग युगों से चला आ रहा है हमारी विशिष्ट जीवन पद्धति को नियमित करता है। इस मूल विचार की अविरल धारा सन्देशों के रूप में चली आ रही है। उन सन्देशों में गीता एक महान सन्देश ग्रन्थ है। उपनिषद्, रामायण और महाभारत उन पर विशद् रूप में प्रकाश डालते हैं और इन सबके बाद भी स्वामी रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, निम्बकाचार्य प्रभृति महापुरुषों के जीवन और उपदेश प्राचीन परम्परा का आधुनिकतम सन्देश है।

इन्हीं सन्देशों का अध्ययन और चिन्तन करना और उनके अनुसार आचरण करना ही अध्यात्म मार्ग का अनुशरण करना है। जैसा कि मैं समझता हूँ, सन्देशों को सङ्क्षिप्त रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है–ईश्वर ही सृष्टि को धारण किये हुए है और उसी की प्रेरणा से चेतना व्याप्त है। मनुष्य में उसकी अभिव्यक्ति का ही नाम आत्मा है और उस आत्मा का विधान सर्वोपरि होता है। मनुष्य के प्रयास का उपदेश यह है और होना चाहिये कि वह अपने को अपने सहजीवों को और भौतिक जगत् को इस तरह रूपान्तरित कर ले कि जीवन में आत्मा का साक्षात्कार हो जाय और ईश्वर प्रकट हो जाय।

नैतिक कारण के नियम को समझना, पूरा करना और उसका अनुसरण करना आत्मा की खोज उपलब्धि की दिशा में पहला कदम है। अहिंसा, सत्य, संयम और अपरिग्रह के अपने रूपों में यह नियम ही विश्व की नैतिक व्यवस्था का समर्थन करता है और साधन की पवित्रता का ख्याल रखने पर उतना ही बल देता है जितना साध्य पर कोई भी व्यक्ति दुष्टतापूर्ण साधनों से अच्छे साध्य तक नहीं पहुँच सकता।

मनुष्य का दैवी तत्त्व है मूलभूत आकाङ्क्षा, जो सत् चित् आनन्द, प्रेम, मुक्ति और शान्ति के लिये होती है। यही कारण है कि वह कोई ऐसा अणु नहीं है जो भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान के नियमों से सञ्चालित होता है। वह केवल जीवन की कोई इकाई नहीं है, पशु की तरह वृत्तिक प्रतिक्रियाओं का गट्ठर नहीं है और न वह कोई सोचने की मशीन है। जैसा कि वह विश्वास करता है। इसी के कारण वह उस देवत्व का स्फुलिङ्ग है जो ईश्वर की ओर ले जाता है।

अस्तु अपने उद्देश्य पूर्ति के लिये तथा अपने विकास के लिये उतना ही जितना कि समूची जाति के विकास के लिये मनुष्य की स्वतन्त्रता आवश्यक है उसका व्यक्तित्व अविभाज्य और पवित्र है। उसकी विचार एकरूपता या विचार केन्द्रीकरण भली ही उसका उद्घोषित लक्ष्य सामूहिक प्राप्त करना हो, बुरा है और विपत्तिकर भी है। इसमें मानव में सत्ता की क्षति व्यक्तित्व की मूलभूत आकाङ्क्षाओं का दमन, उसके व्यक्तित्व का मूलोच्छेदन, आतङ्क और असत्य का स्थायित्व तथा आत्मा के अन्वित्व की अस्वीकृति अन्तर्निहीत हैं।

सामाजिक भावना जो मनुष्य में अन्तर्निहित है, सामूहिक जीवन की ओर प्रेरित करती है, मनुष्य के अपने अस्तित्व के लिए ही यह बहुत आवश्यक है और इसके साथ सङ्गठन अनुशासन और सामाजिक नियन्त्रण लगे हुए हैं। इन सारी चीजों से अनियमित स्वतन्त्रता की क्षति होती है। फिर भी यह सामाजिक नियन्त्रण जो मनुष्य के बचे रहने के लिए आवश्यक है, अपने में ही साध्य नहीं है। आत्मा-अभिव्यक्ति की सुविधा प्रदान करना मूलभूत आकाङ्क्षाओं को दृढ़ करना और मनुष्य को ईश्वर की ओर ले जाना इसका उद्देश्य होना चाहिये। अत: सामाजिक जीवन में बस उतना ही सामाजिक नियन्त्रण होना चाहिए जिससे कि एक व्यवस्थित जीवन चलता रहे और साथ ही बुद्धि के उन्मुक्त, उपभोग और मूलभूत आकाङ्क्षाओं के निर्भय अनुगमन के लिये यथेष्ट स्वतन्त्रता मिलती रहे।

यही सच्चा लोकतन्त्रात्मक जीवन है, आप इसे चाहे और कोई नाम भी दे सकते हैं। एक जनता का लोकतन्त्र मनुष्य को गुलाम बना दे सकता है। एक ऐसा ही सत्यवादी चरम हो सकता है जो व्यवस्थित सामाजिक जीवन और व्यक्तिगत स्ततन्त्रता दोनों के लिये रास्ता निकाल ले।

भारत की संस्कृति मृत संस्कृति नहीं है। इसका आवाहन करना अतीत के मूल्यों की सङ्कीर्णता के साथ पुन: प्रतिष्ठित करना नहीं कहा जायेगा।

इसके अनुसार चलना प्रतिक्रियावादी कहलाना नहीं है। यह इस अर्थ में शाश्वत् है कि इसके मूलभूत विचार पर काल का कोई आघात नहीं पड़ा है, बल्कि यह हमेशा ताजा है। विचारों द्वारा बने मूल्यों और गुणों को बदलते हुए समय की आवश्यकता के अनुकूल, युग-युगों तक सशक्त करते रहा जा सकता है।

यही कारण है कि भारतीय संस्कृति की शक्ति अक्षुण्ण है और समय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसको फिर अखण्ड बनाया जा रहा है।

जब तक पहले मनुष्य का परिवर्तन नहीं होता तब तक देश और जीवन को परिवर्तित करना या बुराई का प्रतिरोध करना सम्भव नहीं हो सकता इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य में अवस्थित आत्मा ही उसके व्यक्तित्व को बदलती और स्पष्टरूप में कहा जाय तो इसका महलब यह हुआ कि उसे आत्मा के विधान के अनुसार रहने की कला सीखनी चाहिए।

इस कला ज्ञान के अभाव में इतिहास की सही व्याख्या नहीं हो पाती। इतिहास की सही व्याख्या स्वयं ऐतिहासिक होती है। बुराई, त्रुटि, मय और हिंसा के विरुद्ध असंख्य जीवन के अनवरत संघर्ष के साथ उनके ही द्वारा आत्मा की परतों का खुलते जाना ही वह गतिशील शक्ति है जो इसके पीछे है। अगर हमने श्रीराचन्द, श्रीकृष्ण, व्यास आदि ऐतिहासिक भूमिका की उपेक्षा कर दी तो इतिहास अर्थहीन हो जायेगा। इतिहास में भारत का कर्त्तव्य यह है कि मनुष्य जाति के विकास में आध्यात्मिक तहों को खोलते जाय। यही कारण है कि जबकि दूसरे राष्ट्र मर गये या मुमूर्ष हो रहे हों, अध्यात्म की जन्मभूमि जैसा कि मैंने कहा है–युग युगों से जीविन चली आ रही है।

आचरण और भाषाओं की भिन्नता के बावजूद भारत अपनी संस्कृति के प्रभाव में एक तरह की एकता प्राप्त की है। संस्कृत आज भी इसका स्रोत है। एकीकरण की यह शक्ति ऐसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है जिसकी अन्तर्वस्तु और जिसका बल भारत को एक समृद्धत्तर प्रेम एवं सौहार्द की ओर और अन्तत: अध्यात्म जीवन की ओर ले जाते हैं।

****

एकादशी व्रत के अनुष्ठान से यमलोक शून्य पड़ा

भगवत्प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन एकादशीव्रत का पालन है। बालक, वृद्ध और रोगी को छोड़कर शेष लोग एकादशी व्रत अवश्य करें। एकादशी व्रत करते समय ध्यान देना चाहिये कि पूर्वविद्धा (दशमीविद्धा) एकादशी व्रत न करे। दशमी विद्धा एकादशी करने वाले मनुष्य का धर्मनाश, सन्ताननाश तथा सम्पत्ति का नाश होता है। जैसे विन्दु मात्र मद्य के स्पर्श से गङ्गाजल और कुत्ते के स्पर्श से पञ्चगव्य त्याज्य हो जाता है उसी तरह दशमी विद्धा एकादशी दूषित मानी गई है। दोनों पक्ष का एकादशी व्रत करना चाहिये। एकादशी व्रत करते समय निम्नलिखित नियमों पर ध्यान रखना चाहिये—

१. जिस दिन एकादशी का मान ५४ दण्ड से अधिक हो उस दिन व्रत नहीं करना चाहिए। द्वितीय दिन द्वादशी को व्रत करे।
२. अगर नवमी एक पल भी हो और दशमी तिथि का क्षय हो तो एकादशी का मान ५४ दण्ड से कम होने पर भी उस दिन व्रत न करे; क्योंकि

वह दशमी विद्धा एकादशी होती है। वैसी स्थिति में द्वादशी को ही व्रत करे।

३. यदि दो दिन एकादशी तिथि हो तो द्वितीय एकादशी को व्रत रहना चाहिए।

४. दशमी का मान ५५ घड़ी से अधिक हो जाय तो उसके द्वितीय दिन एकादशी को ही व्रत न करके द्वादशी को व्रत करे।

५. यदि एकादशी तिथि का क्षय हो तो द्वादशी का व्रत करे।

जब एकादशी को व्रत करे तब द्वादशी में पारण करना आवश्यक है; परन्तु द्वादशी को व्रत करने पर त्रयोदशी को पारण करने में दोष नहीं माना जाता— ***'त्रयोदश्यास्तु पारणम्'।***

राजा रूक्माङ्गद के राज्य में एकादशी व्रत करने वाले वैकुण्ठ चले जाते थे। रूक्माङ्गद एक चक्रवर्ती राजा थे, वे भगवान विष्णु के सच्चे भक्त (श्रीवैष्णव) थे। वे राजा भगवान विष्णु को छोड़कर किसी दूसरे देवता से प्रेम नहीं करते थे। ***'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां'*** के अनुसार वे भगवान विष्णु के अनन्य भक्त थे वे सभी एकादशी व्रत करते थे। राजा रूक्माङ्गद दशमी को ही हाथी पर से अपने राज्य में ठिंठोरा पीटवाते थे कि आठ वर्ष से अधिक और ८५ वर्ष से कम अवस्था का जो मनुष्य एकादशी को भोजन करेगा वह दण्डनीय, बध्य तथा नगर से निष्कासित कर दिया जायेगा। उसने यह भी घोषणा करवा दी थी कि यदि मेरे पिता, भ्राता, पुत्र, स्त्री तथा मित्र भी एकादशी को भोजन करेंगे तो वे भी चोर की भाँति पकड़े जायेंगे। इस तरह की घोषणा हो जाने से रूक्माङ्गद राजा के राज्य में सारी प्रजा एकादशी व्रत करती थी। उसका परिणाम यह होता था कि उसके राज्य में कोई भी किसी प्रकार से मरता था वह वैकुण्ठ ही जाता था।

एकदशी को सारे पाप अन्न में निवास करते हैं अत: उस दिन जो अन्न खाता है वह पाप के भागी बनता है। राजा रूक्माङ्गद के राज्यकाल में एकादशी व्रत करने के कारण एक भी नरक में नहीं जाता था।

एक दिन नारद जी यमराज के पास जाकर बोले कि नरक में रूलाई क्यों नहीं सुनाई पड़ती। ऐसा मालुम होता है कि पापकर्मों के बारे में आप कुछ लिखते भी नहीं है। आपका लेखापाल चित्रगुप्त भी मौन धारण किये हुए है। नारद के वचन सुनकर यमराज ने उनसे कहा कि इस समय भूतल पर राजा रूक्माङ्गद हैं वे पुराण पुरुषोत्तम भगवान विष्णु के भक्त हैं। वे ठिंठोरा पीटवाते हैं कि एकादशी के दिन कोई भोजन न करे। जो भोजन करेगा वह दण्ड का भागी होगा। राजा के भय से समस्त प्राणी एकादशी व्रत करते हैं। अत: सबलोग मरने पर वैकुण्ठ चले जाते हैं। यही कारण है कि इस समय यमलोक के मार्ग से कोई भी व्यक्ति जाने वाला नहीं है। एकादशी व्रत के योग से लोगों के लिखित कर्मरेखा भी मिट जाती है। एकादशी व्रत करने वाला पाप कर्मों के भोग किए विना ही वैकुण्ठ में चले जाते हैं। अत: मैं काण्ठमृग की तरह निष्तब्ध हो गया हूँ। अब यहाँ मुझे कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। अब मैं अपना दु:ख निवेदन करने के लिए ब्रह्माजी के पास जाऊँगा। जो नौकर विना काम किये ही स्वामी के धन का उपभोग करता है। उसे निश्चय ही नरक में जाना पड़ता है। इतना कहकर यम, नारद और चित्रगुप्त ब्रह्माजी के पास चले गये। यमराज ने ब्रह्मा को देखकर त्राहि-त्राहि कहते हुए उनके आगे गिर पड़े। उन्होंने ब्रह्मा से कहा—हे देवों के स्वामी! मैं महान कष्ट में पड़ गया हूँ। ब्रह्मा ने चित्रगुप्त सहित यम से कहा कि किस कारण आपलोग दु:ख में पड़ गये हैं? यमराज ने कहा पितामह सुनिये जो व्यक्ति

निरीह होकर कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है वह अन्धकूप में गिरता है। निश्चय ही उसे नरक में जाना पड़ता है। जो राजा का कर्मचारी लोभवशात् प्रजा से अनुचित लाभ लेता है वह तीन सौ कल्प तक नरक में वास करता है, अत: मैं आपके आदेश से धर्मपूर्वक प्रजा के ऊपर शासन करता हूँ; परन्तु आज मेरा राजा रूक्माङ्गद द्वारा पराभव हो गया है। पृथ्वी के सारे मानव रूक्माङ्गद के आदेशानुसार एकादशी व्रत करते हैं, उससे मृत्यु के बाद सबलोग वैकुण्ठ चले जा रहे हैं। एकादशी व्रत के प्रभाव से मनुष्य पिता-पितामह आदि के साथ वैकुण्ठ चले जाते हैं। एकादशी करने वाला व्यक्ति तीनों कुल का उद्धार कर देता है। रूक्माङ्गद तीन हजार वर्ष से पृथ्वी पर शासन कर रहे हैं। उस समय से एकादशी व्रत करके सबलोग वैकुण्ठ चले गये और अभी जा रहे हैं। एक भी नरक में नहीं आता। इसलिए यमलोक में मेरा कोई काम नहीं रह गया है। ब्रह्मा ने कहा सूर्यपुत्र जिस भगवान के नाम उच्चारण से मानव परमपद चला जाता है वह एकादशी व्रत करके क्यों नहीं परमपद प्राप्त कर ले। ***(क्रमशः)*****.....**

पितरों की मुक्ति के लिए गया में पिण्ड अवश्य दें

जड़-चेतनमय जगत् भगवान श्रीविष्णु की लीलाविभूति है। ***'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'*** ब्रह्मसूत्र। इस लीलाविभूति के अन्तर्गत चौरासी लाख प्रकार की योनियों में कर्मानुसार जीव कष्ट भोगता है। भगवान उनमें किसी-किसी पर विशेष कृपाकर मानव शरीर देते हैं।

एवं संसृति चक्रस्थे भ्राभ्यमाने स्वकर्मभिः।
जीवे दुःखाकूले विष्णोः कृपा क्वापिप्युपजायते।।

कबहु कि करि करुणा नर देही।
देत ईस विनु हेतु सनेही।।

पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि की अपेक्षा विलक्षण विवेक प्रधान मनुष्य शरीर देने का उद्देश्य है कि मानव अपने आत्मस्वरूप को समझकर भगवान विष्णु में समर्पित हो जाय। भगवान के चरणों में समर्पित हुए विना जीव का कल्याण नहीं होता है।

'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'। (उपनिषद्)

'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते'। (गीता)

'साधनधाम मोक्षकर द्वारा' यह मानव शरीर मोक्ष का द्वार है (मानस)।

वेदान्त दर्शन में भोक्ता जीवात्मा, भोग्य प्रकृति (माया) और दोनों में स्थित होकर प्रेरित करने वाला परमात्मा है इन तीनों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान अनिवार्य बताया है।

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।

निष्कामकर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और प्रपतियोग–ये चार योग मानव कल्याण के लिए कहे गये हैं। जिसने इन साधनों का अनुष्ठान से परमात्मा को प्रसन्न कर लेता है वह मोक्ष का भाजन बनता है। जिनके पूर्वजों ने इन योगों का आश्रम नहीं लिया, वे तो नरकादि के कष्टों में पड़े रहते हैं। उनके लिए जब इतिहास पुराणादि का आलोडन करते हैं तो एक ही उपाय मिलता है कि उनके वंशज के द्वारा गया में पिण्डदान एवं तर्पण कर दिया जाय। जो व्यक्ति विश्व में कहीं भी मरा हो, वह चाहे किसी भी जाति का हो अगर उसका वंशज अपने पितरों के निमित्त गया में आकर पिण्ड और तर्पण कर लेता है तो उसके पितरगण नरकादि के कष्टों से छूटकर मुक्ति हो जाते हैं। भगवान

श्रीराम ने वाल्मीकिय रामायण ने कहा—

पुम् नामक नरक से उद्धार करने के कारण पुत्र कह जाता है। पुत्र वही है जो सब प्रकार से पितरों की रक्षा करता है। एक पुत्र भी गया की यात्रा कर देता है तो पितरों का कल्याण हो जाता है।

पुम्नाम्नो नरकात् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितृन् य पाति सर्वतः ।।

एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः ।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद् गयां व्रजेत् ।।

इससे सुलभ पितरों की मुक्ति के लिए और क्या उपाय हो सकता है।

इसी का समर्थन नारदपुराण में किया गया है। नारदपुराण में बतलाया गया है कि गया नामक तीर्थ सर्व तीर्थों में श्रेष्ठ है। इस गया तीर्थ के बारे में मोक्ष की कामना वाले पितरों ने कहा है कि मनुष्य को बहुत पुत्र की कामना करनी चाहिये; क्योंकि एक भी पुत्र को गया चले जाने पर पितरों का उद्धार हो जाता है।

जो व्यक्ति ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी, गुरुपत्नी गमन आदि पाप करके मरता है। उसके निमित्त गया में उसका पुत्र आदि पिण्ड तथा तर्पण कर देता है तो वैसे पापी को भी मुक्ति मिल जाती है।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः ।
पापं तत्संगजं सर्वं गयाश्राद्धादिनश्यति ।।

(ना०पु०–४० अ०)

पितरों के प्रकोप से भी पुत्र का अभाव होता है। जिसे पुत्र उत्पत्ति में कठिनाई अनुभव हो वह गया में अपने पितरों के निमित्त पिण्ड दान कर ले। उस पितरों की प्रसन्नता से पुत्र प्राप्त हो जाता है। ऐसे अनेक लोगों को लाभ हुआ है। माता-पिता की मृत्यु के एक वर्ष के बाद गया में पिण्ड दे। जो पिण्ड नहीं देता है। प्रतिवर्ष उसके पितृगण में गया आकर आशान्वित रहते हैं कि मेरा पुत्र पिण्ड देगा, जब पिण्ड नहीं देता तब उसके पितृगण श्राप देकर चले जाते हैं। उन पितरों के श्राप से सन्तान आदि फलों की प्राप्ति में बाधा होती है। नारदपुराण में भी इसके सम्बन्ध में एक कथा मिलती है। त्रेता में विशाल नाम के एक राजा थे। उनकी नगरी का नाम विशाल था। वहीं उनकी राजधानी थी। राजा विशाल को पुत्र नहीं हो रहा था। उन्होंने तत्त्ववेत्ता ऋषियों से पूछा कि मुझे पुत्र क्यों नहीं हो रहा है? पुत्र के लिए मैं कौन-सा उपाय करूँ। ऋषियों ने कहा कि राजन्! पुत्र के लिए आप गया जाकर विधिपूर्वक पितरों को पिण्डदान करें। पितरों की प्रसन्नता से आप को अवश्य पुत्र प्राप्त होगा। विशाल राजा ने ऋषि की आज्ञा के अनुसार पितृपक्ष में गया में आकर विधिवत् पितरों के निमित्त पिण्ड दिया।

विशाल राजा गया में पिण्ड देते समय आकाश में सुन्दर आकृति वाले श्वेत, रक्त तथा कृष्णवर्ण के तीन पुरुष दिखायी पड़ा। उन्हें देखकर राजा ने उनसे पूछा कि आपलोग कौन हैं? श्वेत पुरुष ने बोला मैं तुम्हारा पिता हूँ। रक्त वर्ण वाले मेरे पिता हैं, जो पहले क्रूरकर्मी और ब्रह्मघाती थे। ये कृष्ण वर्णवाले पुरुष तुम्हारे प्रपितामह हैं। इन्होंने पूर्वजन्म में अनेक पुरातन ऋषियों का वध किया था। वे दोनों पितापुत्र नरक भोग रहे थे। इस समय तुमने गया में पिण्डदान करके पिता पितामह और प्रपितामह को तृप्त कर दिया। सब लोग वैकुण्ठ में चले गये। उन पितरों के आशीर्वाद से विशाल राजा पुत्रवान हो गये।

अतः गया तीर्थ की महिमा अवर्णनीय है।

****

भरत राम संवाद

भरत ने श्रीराम से कहा कि भैया? पिताजी ने वरदान देकर मेरी माँ कैकेयी को सन्तुष्ट कर दिया। माता ने अयोध्या का राज्य मुझे दे दिया, जब मैं यह अकण्टक राज्य आपकी सेवा में समर्पित करता हूँ। आप इसका पालन करें। इस विशाल राज्य को आपके बिना कोई नहीं सम्भाल सकता है। जैसे गदहे घोड़े की और अन्य पक्षी गरुड़ की चाल नहीं चल सकतें, वैसे ही मुझेमें भी आपके समान राज्यपालन की शक्ति नहीं है। जैसे कोई भी पुरूष वृक्ष लगाता है फल के लिए वह वृक्ष को सींचकर बड़ा बना देता है। अगर वृक्ष फल नहीं देता तो वृक्ष लगाने वाले पुरूष का उद्देश्य पूरा नहीं होता है। उससे वह पुरूष अप्रसन्नता प्रकट करता है। उसी प्रकार पिताजी ने आप-जैसे सर्वगुण सम्पन्न पुत्र को लोकरक्षा के लिए उत्पन्न किया है। यदि आप राज्य का भार नहीं लेते हैं तो पिताजी का उद्देश्य व्यर्थ हो जायेगा। अत: आप अयोध्या के राज्य पद पर अभिषेक होकर प्रजा का पालन करें। भरत जी प्रेम विभोर होकर विलाप करते हुए श्रीराम से राज्य पद पर अभिषिक्त होने के लिए प्रार्थना कर रहे थे। उनकी इस दशा को देखकर श्रीराम ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि भाई यह जीव ईश्वर के समान स्वतन्त्र नहीं है, कोई भी अपनी इच्छा के अनुसार यहाँ कुछ नहीं कर सकता। काल पुरूष को इधर-उधर खींचता रहता है। समस्त संग्रहो का अन्त पतन विनाश है, लौकिक उन्नतियों का अन्त पतन है, संयोग का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त भरण है। जैसे पके हुए फलों का पतन अवश्य होता है, उसी प्रकार मनुष्यों की मृत्यु भी अवश्य होती है। जैसे सुदृढ़ स्तम्भ वाला मकान भी पुराना होने पर गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य भी बुढ़ापा और मृत्यु के वंश में पड़कर नष्ट हो जाता है। जो रात बीत जाती है, वह पुन: लौटकर नहीं आती। दिन रात लगातार बीत रहे हैं और संसार में सब प्राणियों की आयु का नाश तीव्र गति से हो रहा है। भरत। तुम अपने लिए ही चिन्ता करो दूसरों के लिए बार-बार शोक मत करों। कोई व्यक्ति कहीं भी रहे उसकी आयु निरन्तर क्षीण हो रही है। मृत्यु व्यक्ति के साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है और मार्ग से चलकर साथ ही लौट जाती है। शरीर जीर्ण हो जाता है बाल भी सफेद हो जाते हैं, परन्तु मृत्यु से बचने के लिए मनुष्य के पास कौन सा उपाय है। लोग सूर्योदय और सूर्यास्त होने पर प्रसन्न होते हैं। परन्तु यह नहीं जानते कि प्रतिदिन अपने जीवन का नाश हो रहा है। किसी भी ऋतु के आने पर लोगों को हर्ष होता है, किन्तु वे यह नहीं समझते कि ऋतुओं के परिवर्तन से प्राणियों की आयु क्रमश: क्षीण हो रही है। जैसे सागर में बहते हुए दो काठ कभी एक-दूसरे से मिल जाते हैं और कुछ काल के बाद वे पुन: अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री,पुत्र, परिवार और धन भी मिलकर बिघुङ जाते हैं, क्योकि इनका वियोग अपश्यम्भावी है। संसार में कोई भी प्राणी प्राप्त होने वाले जन्म-मरण का उल्लङ्घन नहीं कर सकता। जो व्यक्ति किसी भरे हुए व्यक्ति के लिए बार-बार शोक करता है, उसमें भी अपनी मृत्यु को टालने का सामर्थ्य नहीं है। जैसे जाते हुए पथिकों अथवा व्यापारियों से रास्ते में खङा हुआ पथिक कहे कि मैं भी आपलोगों के पीछे-पीछे अऊँगा और वह उनके पीछे-पीछे जाय, उसी प्रकार हमारे पूर्वज पिता-पितामह आदि जिस मार्ग से गए हैं तथा जिससे बचने का कोई उपाय नहीं है, उसी मार्ग पर स्थित मानव किसी के लिए

शोक कैसे और क्यों करता है? जैसे नदियों का प्रवाह पीछे नहीं लौटता, उसी प्रकार ढलती हुई अवस्था फिर नहीं लौटती है। वह क्रमश: नाश की ओर ही जाती है। मानव को इनसब बातों को समझ कर आत्मकल्याण के साधन स्वरूप धर्म में लग जाना चाहिए। हमारे पिता धर्मात्मा थे। उन्होंने पर्याप्त दक्षिणा देकर यज्ञों का अनुष्ठान किया था। उनके पाप नष्ट हो गए थे अत: वे शोक करने योग्य नहीं हैं। इसलिए भरत! तुम यहाँ से जाकर अयोध्यापुरी में निवास करो। पिताजी ने तुम्हारे लिए ऐसा ही आदेश दिया है। उन्होंने मुझे जहाँ रहने के लिए आदेश दिया है, मैं भी वन में रहकर उनकी आज्ञा का पालन करुँगा। पिताजी के शुभ आचरणों पर दृष्टिपात कर तुम भी अपने धार्मिक स्वभाव के अनुसार आत्मा की उन्नति के लिए प्रयत्न करो

****

श्रीवेङ्कटेश जी के लिए ४५ करोड़ का मुकुट समर्पित

श्रीरामानुज सम्प्रदाय के १०८ दिव्य देशों में प्रमुख श्रीवेङ्कटेश बालाजी तिढमला तिरुपति कलियुग के प्रत्यक्ष भगवान् है। आपको श्रीरामानुज स्वामी जी के श्रीशंख-चक्र प्रदान करके अपना शिष्य भी बनाया था। भक्त और भगवान् के प्रत्यक्ष सम्बन्धों का साक्षी यह मन्दिर आज विश्व का सबसे धनी देव-स्थान है। यहाँ पर भक्त अपने भगवान् को प्रचुर मात्रा में स्वर्ण और कीमती हीरे-जबाहरात भेंट करके स्वयं को धन्य मानते हैं। कहा जाता है कि देवी पद्मावती से विवाह करने के लिए भगवान् को प्रचुर स्वर्ण की आवश्यकता पड़ी थी, तब उन्होंने अपने भक्तों से स्वर्ण दान देने के लिए कहा और आश्वासन दिया कि जो मुझे आज स्वर्ण दान देगा मैं उसे भी विवाह के बाद प्रचुर धन-सम्पत्ति प्रदान करूँगा। तथी से भक्त श्रीवेङ्कटेश बालाजी को स्वर्ण और रत्न भेंट करते चले आ रहे हैं।

भारत वर्ष में श्रीवेङ्कटेश भगवान् के अनेक मन्दिर हैं। भगवान् वेङ्कटेश जी जहाँ विराजते हैं, वही सेवा करने वालों के मनोरथ पूर्ण होते हैं। मुम्बई स्थित श्रीवेङ्कटेश देवस्थान में भी विगत वर्ष कई भक्तों ने भगवान् को हीरे के हस्त (हाथ) और मुकुट समर्पित करके अपने मनोरथों को पूर्ण किया है।

विगत १२ जून २००९ शुक्रवार को तिढमला में श्रीवेङ्कटेश भगवान् को समारोहपूर्वक अद्भुत हीरों से निर्मित ४५ करोड़ रुपये की लागत का एक दिव्य मुकुट समर्पित किया गया। इस कार्य में कर्नाटक के पर्यटन मन्त्री जी० जनार्दन रेड्डी जो 'ब्राह्मणी स्टील इण्डस्ट्रीज' के मालिक भी हैं, श्रद्धापूर्वक यह भेंद भगवान् को समर्पित की हैं। इस प्रकार से श्रीवेङ्कटेश बालाजी के अलङ्कार भण्डार में एक और अद्भुत मुकुट की संख्या बढ़ गई है। इस प्रकार श्रीबालाजी के खजाने की कीमत लगभग ५० हजार करोड़ से भी अधिक की बताई जाती है।

स्मरणीय है कि श्रीवेङ्कटेश भगवान् तिरुपति बालाजी की जिस प्रकार आय होती है, उसी प्रकार उस देवस्थान से जनहित के अनेक कार्य भी सम्पन्न होते हैं। जैसे–रोगियों का उपचार, विद्यार्थियों की शिक्षा, विद्वानों का सम्मान, साहित्य का प्रचार-प्रसार, मासिक पत्रिका का प्रकाशन, दर्शनार्थियों के लिए नि:शुल्क ठहरने, घूमने, प्रसाद आदि की व्यवस्था महत्त्वपूर्ण है। उक्त सेवाओं से अन्य देवस्थानों को भी प्रेरणा लेनी चाहिए, इन सेवाओं से भगवान् को प्रसन्नता होती है।

****

नारायण की श्रेष्ठता एवं उनके अवतार का स्वरूप

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।

प्राचीन काल में आत्म-तत्व का मनन करने वाले मुनिगण अपने कल्याण के लिये शुद्धसत्वमय भगवान विष्णु की आराधना करते थे। मुमुक्षु पुरुष के एक मात्र आराध्य भगवान विष्णु ही हैं। अतएव वर्तमान समय में जो मुक्ति की कामना रखने वाले हैं वे लोग प्राचीन मुनियों की भाँति कल्याण के लिये नारायण की ही आराधना करते हैं। जो मनस्वी पुरुषगण संसार-सागर से पार करना चाहते हैं वे रजोगुण,तमोगुण प्रधान देवों की उपासना न कर शुद्ध सत्त्वमुषी भगवान् नारायण का ही भजन करते हैं। राजस और तामस पुरुष ही धन ऐश्वर्य और सन्तान की कामना से नारायण को छोङकर दूसरे की उपासना करते हैं। समस्त वेद प्रतिपाद्यं भगवान वासुदेव हैं। जप-तप,यज्ञ और योग आदि धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान भगवान नारायण की कृपा से ही सफल होते हैं। भगवान, प्रकृति और उनके गुणों से अतीत हैं। फिर भी अपनी गुणमयी माया से संसार की रचना करते हैं। सत्त्व,रज और तम ये तीनों गुण माया के ही विलास हैं। भगवान सभी कल्याण गुणों से परिपूर्ण, प्राकृत गुणों से रहित और विज्ञाना नन्दस्वरूप हैं। जैसे एक ही अग्नि विभिन्न प्रकार की आकृति वाली लकङियों के आश्रय से अनेकाकृतिवाली प्रतीत होती है,उसी प्रकार मानव कल्याण के लिये मत्स्य कूर्म, वाराह, मानवादि के शरीर धारण कर विभिन्न रूप में प्रतीत होते हैं। वे ही सृष्टि के समस्त प्राणियों का पालन-पोषण भी करते हैं।

भगवान के अवतार—सृष्टि के आदि में नारायण को लोक निर्माण की इच्छा हुई। उन्होंने पञ्चभूतों (पृथिवी, जल,तेज,वायु और आकाश) का निर्माण किया। तदनन्तर जल में शयन करते हुए योगनिद्रा का विस्तार किया। उस समय भगवान के नाभि सरोवर से एक कमल प्रकट हुआ। उस कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। भगवान के विराट रूप के अङ्ग प्रत्यङ्ग में ही समस्त लोकों की कल्पना की गयी है। भगवान का वह रूप हजारों पैर, जाँघें, भुजाएँ और मुखों के कारण अत्यन्त विलक्षण है। उसमें हजारो सिकेके एएसिससय्याााासिसि

हजारो सिर हजारो कान, हजारो आँखे और हजारो नासिकाएँ हैं। हजारो मुकुट, वस्त्र और कुण्डल आदि आभूषणों से वह स्वरूप विभूषित है। उसमें हजारो सिर हजारो मुकुट, वस्त्र और कुण्डल आदि आभूषणों से वह स्वरूप विभूषित है। भगवान का यही स्वरूप है जिसे नारायण कहते हैं। यह अनेक अवतारों का अक्षय कोष है अर्थात इसी से सारे अवतार प्रकट होते हैं- ''एतन्नानापतारणां निधानं बीजभव्ययम्'' वह भगवान का विशुद्धात्त्वमय श्रेष्ठरूप है। योगी लोग अपनी दिव्य दृष्टि से भगवान के उस रूप का दर्शन करते हैं। अवतार दो प्रकार के हैं- अंशावतार और पूर्णावतार।

१. भगवान ने सनक,सन्नदन, सनातन और सनत्कुमार इन चार ब्रह्मणों के रूप में अवतार लेकर अत्यन्त कठिन ब्रह्मचर्य का पालन किया।

२. संसार के कल्याण के लिये यज्ञों के स्वामी भगवान ने ही रसातल में गयी हुई पृथिवी को निकालने के लिये सूकर (वाराह) रूप धारण किया।
३. भगवान् देवर्षि नारद के रूप में आकर शाश्वततंत्र

(नारदपाञ्चरात्र) का उपदेश किया। उसमें कर्मों के द्वारा कर्म बन्धन से मुक्ति का वर्णन किया गया है।

४.धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से भगवान ने नर-नारायण का रूप धारण किया है। इस अवतार में उन्होंने ऋषि बनकर मन और इन्द्रियों का संयम कर बडी तपस्या की है।

५. यह अवतार सिद्धों के स्वामी कपिल के रूप में हुआ। तत्त्वों का निर्णय करने वाले सांख्य शास्त्र का उपदेश इन्होंने किया है।

६. अनुसुया के वर माँगने पर अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय के रूप में छठा अवतार हुआ है। इस अवतार में उन्होंने अलर्क एवं प्रहलाद आदि को ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है।

७. यह अवतार रूचि प्रजापति की आकृति नाम की पत्नी के गर्भ से यज्ञ पुरूष के रूप में हुआ है। इसमें देवताओं के साथ स्वायम्भुवमन्वन्तर की रक्षा की है।

८. राजानाभि की पत्नी मेरू देवी के गर्भ से भगवान ऋषमदेव के रूप में अवतार ग्रहण किये हैं। इस रूप में परमहंसो के मार्ग का दर्शन कराया है।

९. ९वाँ अवतार भगवान ने ऋषियों की प्रार्थना से पृथु के रूप में ग्रहण किया है। इस अवतार में भगवान ने पृथिवी से समस्त औषधियों को दूहा है। १०. चाक्षुस मन्वन्तरों के अन्त में जब समस्त पृथिवी समुद्र में डूब गयी थी, उस समय भगवान महस्य के रूप में १०वाँ अवतार लेकर पृथिवी रूपी नौका पर बैठकर अगले मन्वन्तर के अधिपति वैवश्वतमनु को रक्षा की है।

११. समुद्र मंथन के समय भगवान कच्छप बनकर मंदराचल को अपनी पीठ पर धारण किये हैं। १२. १२वें अवतार में धन्वन्तरि के रूप में अमृत लेकर प्रकट हुए हैं।

१३. समुद्र मन्थन के समय प्रकट हुए अमृत घट को देवताओं से छीनकर दैत्य अपने अधीन कर लिए थे। उस समय भगवान ने मोहिनी रूप धारणकर देवताओं को अमृत पिलाया था।

१४. जिस समय हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रहलाद को कष्ट दे रहा था। उस समय भगवान ने नरसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का संहार किया है।

१५. जब बलि ने समस्त पृथिवी को अपने अधीन करने के बाद स्वर्ग से देवताओं को हटाकर उसे अपने अधीन कर लिया,तब देवताओं के राज्य वापस कराने के लिए भगवान अदिति की प्रार्थना पर वामन रूप में प्रकट हुए थे।

१५. जब राजा लोग ब्राह्मणों के द्रोही होकर उन्हे विशेष कष्ट दे रहें थे। उस समय भगवान परशुराम के रूप में अवतार लेकर पृथिवी को २१ बार क्षत्रियों से शून्य कर दिया था।

१७. जिस समय लोगों की बौद्धिक और धारण शक्ति कम हो गयी थी, उस समय भगवान व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए थे। उस अवतार में वेदों को शाखादि रूप में विभाजित किया था।

१८. देवताओं के कार्य सम्पन्न करने के लिये भगवान ने राम रूप धारण किया था, जिनके कार्य जगत् में प्रसिद्ध हैं।

१९+२०. बलराम और श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट होकर पृथिवी का भार हटाया है।

२१. देवताओं के द्रोही दैत्यों को मोहित करने वाले भगवान ने बुद्धावतार धारण किया है।

२२. कलियुग के अन्त समय में जब राजा लोग प्रायः लुटेरे हो जायेंगे, उससमय जगत् के रक्षक भगवान विष्णु यश नामक ब्राह्मण के घर कतिक रूप में अवतार ग्रहण करेंगे।

इन अवतारों में सनकादि, नारद, कपिल,

दत्तात्रेय, ऋषभदेव, यज्ञपुरूष आदि भगवान के अंशावतार हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, श्रीकृष्ण और कतिक ये दस भगवान के विशेष स्वरूप हैं जिनमें समयानुसार ''कृष्णास्तु भगवान स्वयम्'' ऐसाकहकर श्रीव्यास जी ने श्रीकृष्णावतार का विशेष महत्व बतलाया है। जब सब लोग दैत्यों के अत्याचार से व्याकुल हो जाते हैं तब भगवान युग-युग में अनेक रूप धारण करके त्रस्त लोगों की रक्षा करते हैं। भगवान के दिव्य जन्मों की कथा अत्यन्त रहस्यमयी है। इस प्रकार के स्थूल रूप से परे भगवान का एक सूक्ष्म अण्यक्त स्वरूप होता है, जो प्राकृत दृष्टि से देखने में नही आता है। उसी का अन्तर्यामी रूप में उपनिषदों में वर्णन किया गया है, समस्त जङ चेतनात्मक जगत् में उस रूप से भगवान् व्याप्त हैं। जैसे शरीर में आत्मा रहती है उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् में परमात्मा रहते हैं। अतएव सम्पूर्ण चेतनाचेतन जगत् ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म जगत् की आत्मा है। भगवान की लीला अमोद्य है। वे लीला से ही इस संसार का सृजन, पालन और संहार करते हैं। संसार के जो निर्माणादि कर्म हैं भगवान उनसे लिप्त नहीं होते हैं। प्राणियों के अन्दर ज्ञानेन्द्रिय और मन के रूप में रहकर उनके विषयों को ग्रहण भी करते हैं, परन्तु उनमें आसक्त नहीं होते। भगवान परम स्वतन्त्र हैं इसलिये विषय उनपर प्रभाव नहीं डाल सकता। जैसे अनजान मनुष्य जादूगर या नट के संकल्प और वचनों से की हुई करामात को नहीं समझ पाता, उसी प्रकार अपने संकल्प और वेदवाणी के द्वारा भगवान के प्रकट किये हुए अनेक नाम और रूपों तथा उनकी लीलाओं को बुद्धिहीन मानव तर्क युक्तियों से नहीं पहचान सकता है। चक्रपाणि भगवान की शक्ति और पराक्रम अन्नत हैं, उनकी कोई पार नहीं पा सकता। वे सारे जगत् के निर्माता होते हुए भी उससे परे हैं। उनके स्वरूप या उनकी लीला के रहस्य को वही जान सकता है जो नित्य, निरन्तर, निष्कपट भाव से उनके चरणों का चिन्तन करता है। इसलिये सूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा कि आपलोग बङे सौभाग्यशाली तथा धन्य हैं जो जीवन में अनेक विघ्न-बाधाओं से भरे इस संसार में समस्त लोकों के स्वामी भगवान श्रीकृष्ण से अन्नय प्रेम करते हैं। जिससे आपलोगों को इस जन्म-मरण रूप संसार के भयंकर चक्र में नहीं पङना पङेगा।

पुनः सूतजी ने शौनकादियों से कहा कि वेदव्यास जी ने वेदों के समान भगवत्चरित्र से परिपूर्ण भागवत नामक पुराण का निर्माण किया है। इस भागवत महापुराण को श्रीवेदव्यास जी ने परम कल्याण के लिये अपने आत्मज्ञानी पुत्र शुकदेव को सुनाया। श्रीमद्भागवत पुराण में सारे वेद और इतिहासों का सारतत्त्व संग्रह किया गया है। इसीलिये यह पुराण वेदरूपी कल्पवृक्ष का पका हुआ सुस्वादु फल माना गया है। श्री शुकदेवजी ने इसे राजा परीक्षित का सुनाया है। जब भगवान श्रीकृष्ण अपने परमधाम को चले गये, तब इस कलियुग में जो लोग अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे हो रहे हैं। उनके लिये यह पुराणरूप सूर्य प्रकट हुआ है।

****

कुम्भमहापर्व का रहस्य

पौराणिक आख्यायिकाओं के अनुसार समुद्र-मन्थन से समुद्रभूत चौदहवाँ रत्न अमृतकुम्भ असुरों के हाथ न लगे, इस भय से आकान्त देवराज इन्द्र पुत्र जयन्त इसे लेकर भागा। भागते हुए कुम्भ में से अमृत की कुछ बूँदे छलक पडी। जहाँ-जहाँ ये बूँदे गिरीं वहीं कुम्भपर्व आयोजित होने लगे। एक अन्य पौराणिक आख्या है कि उपर्युक्त कुम्भ को प्राप्त करने के लिए देवों और दानवों के बीच बारह दिनों तक युद्ध होता रहा। ये बारह दिन मनुष्यों के बारह वर्ष के बराबर होते हैं, इस अवधि में इन्द्रपुत्र जयन्त ने अमृत कलश को बारह स्थानों पर रखा, जिनमें आठ स्थान स्वर्ग में हैं और चार पृथिवी पर। पृथिवी के जिन चार स्थानों पर अमृत घट रखा गया, वह हर बारहवें वर्ष कुम्भ पर्व मनाया जाने लगा।

पृथिव्यां कुम्भपर्वस्य चतुर्धा भेद उच्यते। चतु:स्थले च पतनात् सुधाकुम्भस्य भूतले।।

गङ्गाद्वारे प्रयागे च धरा गोदावरी तटे। कलशाख्यो हि योगोऽयं प्रोच्चते शंकरदिभि:।।ये चार स्थान हैं- गङ्गाद्वार (हरिद्वार) प्रयाग, धारानगर (उज्जैन) और गोदावरी तट (नासिक)। इनमें प्रारम्भिक दो हरिद्वार तथा प्रयाग उत्तर प्रदेश में गङ्गातटपर ही है। यहाँ अर्धकुम्भ पर्व भी मनाये जाते हैं। अत: योग कुछ ऐसा बन जाता है कि प्रति तीसरे वर्ष हरिद्वार और प्रयाग में कुम्भ अथवा अर्धकुम्भ होता है। हरिद्वार कुम्भ तीसरे वर्ष प्रयाग में कुम्भ,छठे वर्ष हरिद्वार में अर्धकुम्भ, नवें वर्ष प्रयाग में अर्धकुम्भ तथा बारहवें वर्ष पुन: हरिद्वार में कुम्भ पडता है। यह परम्परा कुम्भ पर्व के आरम्भ से ही चली आ रही है।

इस महापर्व के अवसर पर धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत विभिन्न वर्ण-आश्रम के लोग तथा धार्मिक सम्प्रदायों के आचार्य सशिष्य यहाँ पधारते हैं। उनकी साम्प्रदायिक भावनाओं के प्रचार-प्रसार का कार्यान्वित सिद्धान्त एक विराट मेला का स्वरूप धारण कर लेता आप्त महा मनीषियों ने इस महापर्व का प्रारम्भ कई दृष्टियों से किया है, जिसके पूर्ण परिपालन की एक विशिष्ट परम्परा बन गयी है। आज भी उसका निर्वाह ऋषि मुनि मार्गानुगामी श्रद्धालू धार्मिक जन सोत्साह तथा सोल्लास कर रहे हैं। अत: इस परम्परा के आरम्भ होने के मूलभूत आधारों के परिप्रेक्ष्य में कुम्भ पर्व की पौराणिकता खगोल शास्त्रीयता, ऐतिहासिकता तथा सामाजिकता पर संक्षिप्त विचार परमापेक्षित प्रतीत होता है।

बारह कतिपत कुम्भपर्व स्थानों में से चार पृथिवी पर हैं और वह भी देवन्दुर्लभ भूमि भारत में। पौराणिक उल्लेख है कि इन चारो स्थानो पर उपस्थिति योग ही अधिक वैशिष्टयाधायक है। क्योंकि देवगुरु वृहस्पति, सूर्य तथा चन्द्र ने उक्त बारह दिनों में अलग-अलग स्थितियों में कुम्भ की रक्षा की थी, अत: वृहस्पति सूर्य और चन्द्र की विशिष्ट स्थितियाँ ही विभिन्न स्थलों पर कुम्भ का योग लाती है।

वृहस्पति के वृषस्थ और सूर्य के मकरस्थ होने पर प्रयाग में, गुरू के सिंहस्थ तथा सूर्य-चन्द्र के मेषस्थ होने पर उज्जैन में तथा वृहस्पति, सूर्य और चन्द्र इन तीनों के सिंहस्थ होने पर नासिक में कुम्भ पर्व का योग होता है। वेद वाणी है कि कुम्भ पर्व के पुण्य काल में अनुतिष्ठत सत्कर्म से मनुष्यों पुण्य फल तथा पारलौकिक परमान्नद की प्राप्ति होती है।

मुझे तो हरिद्वार कुम्भ की पौराणिकता पर विचार करना है। अत: आपका ध्यान अब वहीं आकृष्ट करना है। अत: आपका ध्यान अब वहीं

आकृष्ट करना चाहूँगा। कुम्भोत्पत्ति की कथा के अन्त में उल्लेख है कि मेष में सूर्य तथा कुम्भ राशि में वृहस्पति के होने से, गङ्गाद्वार यानी हरिद्वार

पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ।
गङ्गाद्वारे भवेदयोग: कुम्भपर्वस्ततो मत:।।

यों तो कुम्भपर्व मात्र में स्नान का अधिकाधिक फल पुराणों में उपवर्णित है, किन्तु हरिद्वार कुम्भपर्व का फल सर्वाधिक है। उक्त योग में यहाँ स्नान,जप, होम और दान करने से मनुष्य जन्म,जरा और मरण रूप भव व्याधि से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

कुम्भ राशि गते जीवे यद्दिने मेषगो रवि:।
हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्तिवर्जनम्।

उपर्युक्त कुम्भपर्व समारोह सामन्य मेलों की भाँति व्यापार एवं मनोरंजन साधनों का सम्मिलित रूप नहीं होता, प्रत्युत आकाशीय ग्रह नक्षत्रों की विशेष स्थितियों से निर्धारित एवं नियन्त्रित होता है। खगोल-शास्त्र के आधार पर ग्रहनक्षत्रों की विशेष स्थितियाँ हर बारहवें वर्ष उपस्थित होती हैं।

ऐसा देखा जाता है कि कुछ साधु संन्यासी मेष राशि पर सूर्य के आने के पूर्व ही हरिद्वार में स्नान करते हैं। इस वर्ष २०१०के १४ अप्रैल से कुम्भयोग होगा। परन्तु पूर्व में ही स्नान करने वाले साधु संन्यासियों का १४ जनवरी से ही मुख्य-मुख्य तिथियों पर स्नान होंगे। सम्भवत: वैष्णव साधुओं ने ३०मार्च से २८ अप्रैल तक हरिद्वार में कुम्भ स्नान करने का निर्णय लिया है। स्नान के मुख्य-मुख्य तिथि अग्रिम अंक में प्रकाशित कर दी जायगी।

****

विश्वमंगल गोग्राम यात्रा

''गांवो विश्वस्य मातर:'' अर्थात गो सम्पूर्ण विश्व की माता है और इसके संरक्षण और संवर्धन से विश्व का कल्याण होगा। हमारे ऋषियों ने कहा था-''गाय के पृष्ठ भाग में ब्रह्माजी,मध्य में विष्णुभगवान ,मुख्य में शिव जी, रोम-रोम में ऋषि-महर्षि,तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं का निवास है। आठों ऐश्वर्य (सुख-समृद्धि) लेकर लक्ष्मी माता गाय के गोबर में वास करती हैं। जहाँ गो के चरण पड़ते हैं वहाँ देवताओं का वास रहता है। गो की महिमा अपरम्पार है। कृषि प्रधान देश भारत की अर्थव्यवस्था का आधार गोमाता हैं। फिर भी यह कैसी विडम्बना है कि देश के कत्लखानों में प्रतिदिन लाखों गो माताओं की निर्ममतापूर्वक हत्या होती है। ग्राम उजड़ रहे हैं, किसान आत्म-हत्या कर रहा है। भोगवादी अर्थव्यवस्था ने हमारे जनजीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया है। गोमाता के संरक्षण का जिन पर दायित्व है, वे ही गो माता का क्षण-क्षण अपमान कर रहे हैं। सम्पूर्ण देश में गो संरक्षण संवर्धन के लिए सकारात्मक वातावरण निर्माण के उद्देश्य से विश्वमंगल गो ग्राम यात्रा विजयादशमी २००९ से आरम्भ हो रही है। यात्रा के दिव्य संकल्प जगद्गुरु शंकराचार्य गोकर्ण पीठाधीश्वर राघवेश्वर भारती स्वामी जी, पूज्य आचार्य विद्यासागर जी, पूज्य रविशंकर जी एवं समस्त राष्ट्रीय सन्तों के आशीर्वाद से यह विश्वमंगल गो ग्राम यात्रा निकालने का निश्चय हुआ है।

यह यात्रा १०८ दिनों की होगी जिसमें एक दिन में चार कार्यक्रम होंगे तथा २०० किलोमीटर दूरी तय होगी। इस प्रकार यह मुख्य यात्रा २० हजार किलोमीटर का मागे तय करती हुई ४०० स्थानों पर कार्यक्रम करेगी। इसके साथ ही जिला-तहसील, प्रखण्डों से उपयात्रायें निकाली जायेंगी। इसी क्रम में लक्ष्मी नारायण मंन्दिर हुलासगंज जहानाबाद से भी एक उपयात्रा प्रारंभ की जायेगी,जो

सम्पूर्ण जहानाबाद की परिक्रमा करेगी। इस यात्रा के माध्यम से हर घर से सम्पर्क किया जायेगा, जिसके गो माता हमारे लिए कितनी उपयोगी हैं, उसके पंचगाव्य मनुष्य, पशुपक्षी व भूमि के लिए कितने आवश्यक है, यह समझया जायेगा। विभिन्न घातक बीमारी जैसे कैंसर, मधुमेह,हृदयरोग, पेट के सब रोग दांत के रोगों से कैसे बचा जा सकता है, रासायनिक खाद्य व कीटनाशकों के कारण हो रहे वायु, अन्न, जल, फल, सब्जी को जहरीली होने से कैसे युक्त किया जा सकता है।

गाय के गोबर से गोबर गैस बनाकर उसमे विद्युत उत्पादन, गोबर गैस के मिथेन अलग कर सिलेण्डर में भरकर वाहन संचालन गोबर से दवा, धूप टाईल्स बनाकर लोगों की बेरोजगारी दूर करना, गोमूत्र से कीटनियंत्रक बनाकर बीजों को शोधन, फसल का रक्षण, गोअर्क, घनकटी से अनेक बीमारियों की चिकित्सा के बारे में इस यात्रा के माध्यम से समझाया जायेगा।

बैल चलित ट्रैक्टर जनरेटर द्वारा किसान को स्वाबलंवी बनाना,सम्पन्न बनाना, जैविक खेती द्वारा लोगों को रोगमुक्त स्वास्थ बनाना। इस प्रकार गाय से देश को रोगमुक्त, कर्जमुक्त, प्रदूषणमुक्त, अन्नमुक्त, ऊर्जायुक्त, विदेशी परावलम्बन से मुक्त कराया जा सकता है।

गाय के उत्पादों से सात्विक विचार उपजेंगे, सेस्कार जगेंगं, जबकि सिन्थेटिक दूध, मिलावटी घी से कोलेस्ट्रोल बढ़ेगा, हृदय रोग पनपेंगे। संस्कृति को बचाने के लिए ग्राम को बचाना होगा, ग्राम को बचाने के लिए गाय को बचाना होगा। गाय-ग्राम संस्कृति के द्वारा ही भारत फिर से विश्वगुरू बनेगा, उससे विश्वमंगल गौ ग्राम यात्रा।

अत: आज गौ-ग्राम को संकट से मुक्त कराने के लिए स्वराज्य से सुराज्य बनाने के लिए, स्वभिमान जगाने के लिए, सच्ची स्वतंत्रता लाने के लिए, विश्व कल्याण के लिए है यह विश्वमंगल गौ ग्राम यात्रा। आप स्वामी जी महाराज सच्चे सेवक तभी माने जायेंगे जब गो-माता की इस जागरण यात्रा में आप भी सहभागी बनेंगे।

****

मुहूर्त्त निर्णय

द्विरागमनमुहूर्त्त

पूर्व से पश्चिम, ईशान से नैर्ऋत्य कोण के लिए—

१. अगहन शुक्ल द्वितीया बुधवार १८।११।२००९ को प्रात: ६।३४ से ७।१८ तक

उत्तर से दक्षिण, वायण्य से अग्नि,ईशान से नैर्ऋत्य कोण के लिए—

२. अगहन शुक्ल अष्टमी बुधवार २५।११।२००९ प्रात: ६।५ से ८।१५ तक।

उत्तर से दक्षिण वायव्य से अग्निकोण के लिए—

३. अगहन शुक्ल पूर्णिमा बुधवार २।१२।२००९ को प्रात: ५।४० से ७।४८ तक।

पूर्व से पश्चिम, ईशान से नैर्ऋत्य कोण के लिए—

४. पौष कृष्ण प्रतिपद गुरूवार ३।१२।२००९ ४।१४ से ६ बजे तक सायंकाल।

गृहारम्भ मुहूर्त्त

१. अगहन शुक्ल दशमी शुक्रवार २७।११।२००९ को दिन में १।३५ से ३।२ तक।

२. अगहन शुक्ल पूर्णिमा बुधवार २।१२।२००९ को १।१३ से २।४० तक दिन में।

३. पौष कृष्ण प्रतिपद गुरुवार ३।१२।२००९ को १।१० से २।३६ तक दिन में।

जीर्णादि गृहप्रवेश मुहूर्त्त

१. कार्तिकशुक्ल त्रयोदशी शनिवार ३१।१०।२००९ को प्रातः ७।४२ से १० बजे तक।

२. अगहन कृष्ण त्रयोदशी शनिवाद १४।११।२००९ को ६।४८ से ९।४ तक दिन में।

३. अगहन शुक्ल दशमी शुक्रवार २७।११।२००९ को प्रातः ६।५ से ८।१० तक

हैं।

****

क